योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

: 29 अप्रैल 1996 अंक : 1

श्री ...द्रगुफा प्रकाशन, सवांई, आगरा

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
श्री चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा
श्री गोविन्द सोनी
ब्र० राजेश चन्द्र शर्मा

अप्रैल १९९६

इस अंक में पढ़िए

- आत्मदर्शन का उपाय १
- मेरे श्री सद्गुरुदेव (विशेष लेख) २
  —योगिराज अनन्त विभूषित श्री चन्द्रमोहन जी महाराज
- सनातन पुरुष योगाधिपति महाप्रभु रामलाल जी महाराज ८
  —आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा
- अमर सद्गुरु महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज १३
  —ब्र० श्री ओमप्रकाश जी पालीवाल
- जगत्पिता आदि शिव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज १७
  —श्रीमति कविता शर्मा
- योग एवम् गुरुदेव २३
  —श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री
- कोटिक-कोटि प्रणाम २८
  —श्री अशोक द्विवेदी
- वर्तमान योग के अमरविद्या के प्रचार-प्रसार में महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की भूमिका २९
  —श्री जयनारायण राय
- श्री सद्गुरु का आल्हाद ही महाप्रभु श्री रामलाल जी का यथार्थ स्वरूप ३३
  —डॉ० श्री विजयसिंह
- बिन्दु रक्षण और मृत्युंजय ३६
  —आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा
- श्री गुरुदेव की कृपायें—"पुत्ररत्न की प्राप्ति" ४३
  —श्री केशवदेव उपाध्याय
- आस्तिकता—एक अध्ययन —श्री हिमांशु ४६
- प्रभु रामः समागतः ५०
  —श्री द्वारिका प्रसाद शर्मा
- योगेश्वर प्रभु रामलाल अष्टोत्तर शत—नाममाला ५७
  —श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री

वार्षिक मूल्य ६० रु० । द्विवार्षिक मूल्य ११० रु० ।
इस अङ्क का मूल्य १० रु० ।

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष २९ अङ्क १	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्धं स्वभावम्, मर्त्यो मृत्योर्मुख विवर्तो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः । तत्त्वाण्यर्थात् तदनुविशदं योगशास्त्रोपदेशात्, कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥	अप्रेल १९९६

आत्मदर्शन का उपाय

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूः
तस्मात्पराङ्पश्यतिनान्तरात्मन् ।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षद्
आवृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥
(कठोपनिषद्)

अर्थात्

परमात्मा ने हमारी इन्द्रियों को बाहर की ओर देखने वाला बनाया है इसलिये वे अन्तरात्मा को न देखकर बाहरी दृश्य देखने का कार्य करती हैं। अमृतत्व की कामना करने वाला कोई धीर पुरुष जिसने अपनी इन्द्रियों को बहिर्मुखता से हटाकर अन्तर्मुखी बना लिया है वह प्रत्यगात्मा को देख लेता है।

विशेष लेख :—

★ मेरे श्री सद्गुरुदेव ★

※ योगिराज अनन्त विभूषित श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेकं परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

मैं अपने श्री गुरुदेव के चरणारविन्द की महिमा किन शब्दों में लिखूं, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। "गुरुदेव" एक ऐसा शब्द है जो सभी के लिये मान्य है और हर व्यक्ति जो किसी भी प्रकार से गुरुदेव की शरणागति प्राप्त कर चुका है उसके लिये गुरुदेव "पूर्ण ब्रह्म" है। साधक जब तक गुरुदेव के स्वरूप में ईश्वर बुद्धि धारण नहीं करता तब तक वह परम श्रेय के पथ का पथिक नहीं बन सकता। इसीलिये भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखने वाली भारतीय जनता अपने-अपने गुरुदेव के चरणारविन्द में पूर्ण ईश्वर बुद्धि रखती है व श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में न्यौछावर होना अपना परम सौभाग्य समझती है। गुरुदेव क्या हैं, और उनका स्वरूप क्या है? यह एक पृथक लेख का विषय है जिसका प्रकाशन इस पत्र के किसी अङ्क में अवश्य होगा। फिर भी मैं इतना बतला देना उचित समझता हूँ कि गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं। एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक की श्रद्धा से निर्वाचित स्वरूप। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से श्रीमद्भगवद्गीता के १७वें अध्याय के श्लोक ३ में कहा है :—

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।

अर्थात्, परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्दघन नित्य चेतन का स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्गार है। श्रद्धावान व्यक्ति जिसके विषय में जो सोचता है, वहीं से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। धन्ना जाट, नामदेव आदि के जितने उदाहरण मिलते हैं वह सबके सब श्रद्धा के ही ज्वलन्त प्रतीक हैं। किसी साधारण व्यक्ति को ईश्वरीय भावना से देखना यह भक्त के हृदय की पवित्र भावना है व ईश्वर का ईश्वर होना उसकी अपनी यथार्थता है। गुरुदेव के विषय में भी सभी आस्तिक लोगों की ईश्वरीय भावना होती है और अपनी भावना के अनुरूप ही वह लोग फल को पा लेते हैं। "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी"। इसके अतिरिक्त यदि श्रद्धेय पुरुष परिपूर्ण है और साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्ट लाभ में कोई शंका का स्थान है ही नहीं। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियाँ लिखने जा रहा हूँ, सिद्धों के महासिद्ध, सर्वसमर्थ, योगयोगेश्वर व सर्वतः परिपूर्ण हैं। उनकी पवित्र

ख्याति को बहुत कम लोग जान पाये हैं। सम्भव हो सकता है कि इस विषय में उनका अपना ही संकल्प हो। किन्तु उनके चरणारविन्दों के चिन्तन करने वाले सर्वसाधारण जन-समुदाय के अन्दर भी जो चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं उनका इस छोटे से लेख के अन्दर लिखना भी सम्भव नहीं हो सकता।

उनकी पवित्र जन्मभूमि अमृतसर [पंजाब] है। अमृतसर में ज्योतिष विद्या के गणमान्य विद्वान महाशास्त्री पं० गंगाराम जी ज्योतिषी के घर में उनका पवित्र अवतरण हुआ। लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बालक्रीड़ा करते हुए घर पर रहे, उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। इसमें सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह थी, जहां-जहां पर कोई पहुँचा वाला सन्त मिलता और मेरे श्रीगुरुदेव जी के स्वरूप को पहचानता वही गद्गद कण्ठ होकर स्तुति करता और कृपा की भीख मांगता। इन पंक्तियों में मैं अपने गुरुदेवजी के जीवन चरित्र के विषय में कुछ लिखूं, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। फिर भी इतना कह देना तो आवश्यक ही है कि अपने बाल्यकाल में ही वह घटनायें घटीं जो सर्व-साधारण के जीवन में कभी हो ही नहीं सकतीं। चार साल की उम्र में अपने माता-पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराना, छः साल की उम्र में वृद्धा पड़ोसिन जो मरणासन्नावस्था में थी, उसके सिर पर अपने कर-कमल का स्पर्श कर पूर्णगति का वरदान देना, लगभग ९ वर्ष की अवस्था में अमृतसर के पास रामतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्माओं को स्वयं ही जाकर दर्शन देना, चौदह या पन्द्रह वर्ष की उम्र में वनों को जाते हुए गुजराबाद की तरफ से निकलते हुए किसी गांव में किसी कुम्हार के लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनकी जन्म-जात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। फिर भी लोक लीला का अनुसरण करते हुए जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नेपाल हिमालय को चले गये। नेपाल की राजधानी काठमाण्डू से ऊपर जहां बागमती गङ्गा का उद्गम स्थान है, वहां से कुछ दूर चलकर किसी आरण्यखण्ड में रहकर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदा शिवस्वरूप एक महापुरुष आये जो मेरे श्री गुरुदेव जी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक स्थान पर छोड़ दिया। केवल दो एक बातें बतलायीं। एक नरभक्षक झाड़ी दिखलाई और कहा कि यह झाड़ी नरभक्षक है, मनुष्य को खा जाती है। दूसरी बात कि तुम यहां रहो। यह कहकर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। इस स्थान में ८-८ मील ७-७ मील की दूरी पर कोई-कोई सिद्ध महापुरुष रहते थे। मेरे श्री गुरुदेव विचरते हुए उन लोगों से मिले। उन लोगों ने बताया वह महापुरुष सदाशिव हैं और कई हजार वर्षों से यहां पर बैठे हुए हैं। यहां सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं और छः महीने में एक बार समाधि से उठते हैं। श्री प्रभुजी मेरे गुरुदेव अपने मुखारविन्द से यह बतलाते थे कि जब तक श्री महाप्रभुजी समाधि से उठे तब तक उनको अपनी भी कई रोज की समाधि लग चुकी थी। इसका अर्थ यही है—

गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तु छिन्नसंशयाः ।

अर्थात्, गुरुदेव का चुपचाप का व्याख्यान हो और शिष्यों के संशय स्वतः ही नष्ट होते चले जायें। यही सद्गुरु तत्त्व की महत्ता है। सामर्थ्यवान गुरुदेव को बहुत उपदेश करने की आवश्यकता नहीं होती, उनका संकल्प ही "कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुम्" की शक्ति रखता है। मेरे श्री गुरुदेव हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर लगभग १२ वर्ष रहे और फिर संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दुःखी जीवों को देखकर उन दयासागर जी के मन में दया के भाव उमड़े और उन्हें संसार के आधिव्याधियों से पीड़ित दुःखी प्राणियों को पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिये श्री कृपानिधि जी भू-मण्डल पर लौट आये। श्री गुरुदेवजी अपने मुखारविन्द से यह कहा करते थे कि हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर बैठ करके आधि-व्याधियों से पीड़ित दुःखाक्रान्त जीवों को देखा और उनके भले की भावना पूर्णरूपेण मन में जग उठी, अतः पुनः संसार में आ करके प्राणी मात्र के भले के लिये पवित्र योगमार्ग के प्रचार का आरम्भ कर दिया।

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान् ।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति ॥

अर्थात्, प्रज्ञा-प्रासाद पर आरूढ़ हुये योगिराज संसार वालों को इस प्रकार देखते हैं जैसे पर्वत शिखर पर बैठे हुए व्यक्ति भूमि वालों को देख लिया करते हैं। ठीक इसी उदाहरण के प्रतीक अनुसार मेरे श्री गुरुदेव भू-मण्डल पर आये और उन्होंने योग प्रचार का पवित्र कार्य आरम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी ने अवनी मण्डल पर आकर तीन प्रकार के कार्य आरम्भ किये :—

(१) योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति—इसमें भी सबसे विशेष बात यह थी, निज निर्मित साधनों का प्रचार। उनमें उनका एक प्रमुख साधन था—"जीवन तत्त्व साधन"। इस जीवन तत्त्व साधन के अन्दर जो क्रियायें हैं, जिनके करने से लोगों को अद्भुत व आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस साधन के अन्दर सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लगातार विधि-विधानपूर्वक करने से पेट में इस प्रकार की अग्नि पैदा करता है जिसको 'वृक' अग्नि कहते हैं। जिस प्रकार जंगली जानवर भेड़ियों को हर समय भूख लगती रहती है उसी प्रकार इन साधनों के करने से अभ्यासी को हर समय भूख लगी रहती है। पेट में एक अग्नि-सी धधकती मालूम पड़ती है। यह अग्नि तब तक बन्द नहीं होती जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक न हो जाये। इसके साथ-साथ इस साधन के अन्दर एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस साधन को करते हुए चक्र का ध्यान करने की एक विधि है, जिससे मन की एकाग्रता का स्वाभाविक लाभ होता है और चक्र दीखने लगता है। इस चक्र को देखने का आह्लाद हर समय बना रहता है और उससे उसके अधिकांश रोगों की निवृत्ति हो जाती है। इसके साथ ही मास डेढ़ मास अभ्यास करने के बाद वही चक्र श्रीकृष्ण आकृति में बदल जाता है और साधक का आध्यात्म में प्रवेश हो जाता है। इस साधन का नाम है "जीवन तत्त्व साधन"। "जीवन तत्त्व साधन" को

क्रियाओं का वास्तविक व अधिकाधिक लाभ सर्वसमाज तक पहुँचे इसलिए उसे पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित करा दिया गया है।

इस पुस्तक में उन क्रियाओं को शरीर के विभिन्न अङ्गों तथा स्थूल सूक्ष्म नाड़ियों का किस-किस प्रकार से प्रभाव पड़ता है इसका वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत हुआ है। साधकगण को चाहिए कि उन क्रियाओं का स्वरूप व लाभ प्राप्त करने के लिए पुस्तक का अवलोकन करें।

इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा के क्षीण रोगियों के लिये श्री गुरुदेवजी ने अपने मन से "अमर तत्व साधन" को निकाला।

(२) अमर तत्व जीवन—जिसमें क्षीर सागर और समुद्र का ध्यान किया जाता है और हाथ पैरों को इस प्रकार से चलाया जाता है जिस प्रकार हम समुद्र में तैर रहे हों। जो साधक श्री गुरुदेव की परम कृपा से अपने को क्षीर सागर में तैरते हुए देखने लग जाते हैं, उनका राजयक्ष्मा रोग बहुत थोड़े दिन में दूर हो जाता है। और उनको इतनी प्रसन्नता होती है कि उसमें उनकी समस्त बीमारियां भाग जाती हैं। और थोड़े ही बहुत दिन के अन्दर अपने आपको पूर्णस्वस्थ देखने लगते हैं। प्रथम बार श्री गुरुदेव श्री यह जीवन तत्व व अमर तत्व आदि साधन ही लोक हितार्थ कराया करते थे किन्तु कुछ समय बाद नेति धौति, न्यौली, वस्ति, गजकरणी आदि क्रियायें भी अधिकारी देखकर कराने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य आसन, बन्ध मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं का शिक्षण भी आरम्भ कर दिया, यह सबसे बड़ा काम उन्होंने संसार में आकर किया।

(३) शक्तिपात दीक्षा—जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है सिद्धयोग और साधन योग। साधन योग में मनुष्य साधन करता-करता शनैः-शनैः अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और सिद्धयोग में सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है और उसकी प्रगति इतनी ऊँची होती है कि जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी प्राप्त नहीं कर सकता। सिद्धयोग के दाता पूर्ण सद्गुरु योगिराज ही हो सकते हैं और वही लोग शक्ति संचार भी कर सकते हैं। इस "सिद्धयोग" का प्रारम्भ भगवान सदाशिव से हुआ। पुराणों में हिमालय के घनघोर जंगल में होने वाले एक सिद्धाश्रम की चर्चा मिलती है। जिसमें भगवान सदाशिव के शिष्य प्रशिष्य योगाचार्यगण निवास करते हैं। यह सभी लोग महासिद्ध हैं। और समय समय पर संसार में व्यस्त मुमुक्षुजनों को सन्मार्ग दर्शन के लिए संसार में आया करते हैं। यह लोग सर्वसमर्थ महापुरुष हैं। यही लोग शक्ति का संचार कर सकते हैं। मेरे श्री गुरुदेव भी इन सबकी तरह एक अनादि महासिद्ध हैं। उन्होंने संसार में आकर शक्तिपात दीक्षा देनी प्रारम्भ की।

उनके कृपा फल को प्राप्त कर कितने ही सैकड़ों की संख्या में साधु जंगलों में समाधि लगा रहे हैं। और तत्व विजयी होकर अपने शरीरों को एक सुन्दर नवयुवक के समान रखते हैं। कितने ही साधु षट्चक्रों का भेदन करके लोक लोकान्तरों में गमन करने की शक्ति वाले हो गये और स्वायत्ततनु होकर हिमालय की कन्दराओं में निवास कर रहे हैं।

मेरे गुरुदेव योग-योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सन् १८१४ के लगभग हरिद्वार के कुम्भ मेले में प्रथम बार हिमालय से उतर कर आये। जिन जीवों के संस्कार उनके चरणारविन्द में उन्हें ले आते हैं या जो इस पवित्र योग मार्ग के जिज्ञासु हैं उनको पवित्र योग-मार्ग का अनुयायी बनाकर परम सत्ता की ओर अग्रसर करना। हरिद्वार कुम्भ मेले के समय उनके अपने संकल्प से ही उनके कुटुम्बी जनों ने उन्हें पहिचाना। और साधारण चर्चाओं में ही तर्क-वितर्क करने लगे कि महाराज जी आप कहीं पर किसी स्थिति में रहें अब हम आपको अवश्य ही पहचान लेंगे। श्री महाराज जी ने उन लोगों से कहा कि भाई हम साधु हैं तुम्हें हमसे आग्रह नहीं करना चाहिए। तुम अपना कार्य करो हम अपना कार्य करेंगे। किन्तु ये लोग नहीं बदले। आग्रह करते ही रहे। इसी बीच में उन्होंने एक आश्चर्य देखा कि उनसे बात करते-करते ही श्री गुरुदेव जी वहीं अन्तर्धान हो गये। वह लोग लाख प्रयत्न करने पर भी उनका अन्वेषण नहीं कर सके। अपनी हठधर्मी का दुष्परिणाम पाकर उन सभी को महान दुःख हुआ। किन्तु उनको यह भी ज्ञान हो गया कि वह हमारे कुटुम्बी भाई-बन्धु ही नहीं हैं बल्कि कोई सामर्थ्यवान् परम योगिराज हैं। श्री गुरुदेव जी की इस प्रभुता को जानकर लोगों ने अनेकों विनय की, जिसके फलस्वरूप श्री प्रभुजी वहीं प्रकट हो गये किन्तु एक बालक के रूप में। उस बालक को वह लोग नहीं पहचान सके। सोचते रहे यह कोई १५-१६ साल का बालक है। कहीं कुम्भ मेले में आया होगा, हमारे पास आकर बैठ गया है। किन्तु इन लोगों की अनभिज्ञता को देखकर उस बालक के रूप में छिपे हुए सर्वसमर्थ सिद्धों के सिद्धेश्वर मेरे गुरुदेव उनसे मुस्कुराकर कहने लगे कि भाई तुम किस चिन्ता में हो? किसका अन्वेषण कर रहे हो? उन लोगों ने कहा, ब्रह्मचारी जी, हमारे एक भाई साधु रूप में अभी-अभी यहाँ थे, किन्तु पता नहीं कहाँ चले गये? हमने उनसे बड़ा आग्रह किया था, उस आग्रह का हमें बड़ा भारी पश्चात्ताप है। जब वह लोग यह कह ही रहे थे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यहाँ कोई ब्रह्मचारी नहीं है, अपितु योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी महाराज हैं।

इस अद्भुत घटना को देखकर सभी कुटुम्बीजनों ने निश्चय कर लिया कि यह केवलमात्र हमारे कुटुम्बी ही नहीं हैं, प्रत्युत इस आकृति में छिपे हुए कोई सर्वसमर्थ योगि-राज हैं। उसके बाद उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में कोई हठ नहीं की और अपने-अपने घरों को लौट गये। कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी को अमृतसर ले जाने का हठ किया, प्रभुजी की स्वयं अपनी इच्छा भी थी इसलिए वह हिमालय से उतरकर आये। उनके हठ को स्वीकार करके अमृतसर चले गये और वहाँ आकर कुछ समय के लिये पण्डित वेश में रहने लगे। यह श्री प्रभुजी का गृहस्थ वेश था। उस वेश में उनको कोई पहचान नहीं सकता था। केवल अपने निवास स्थान पर रहते हुए जिस समय वेद की बात किया करते थे, सुनने वाले समझते थे कि इनके घनघोर जंगलों में सम्भवतः पढ़े गये होंगे। अचानक इन्हीं दिनों में एक घटना घटी। अमृतसर में हॉल दरवाजे से बाहर एक सराय है जिसको सन्त-राम की सराय कहते हैं। उसमें एक परम तेजस्वी देदीप्यमान मुखमण्डल वाले एक महात्मा आकर समाधिस्थ होकर बैठ गये। वह बिल्कुल नग्न थे। तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये पिये समाधि स्थिति में वह महात्मा वहीं बैठे ही रहे। सारे शहर में उनकी

प्रख्याति फैल गई। दर्शकों की भारी भीड़ उनके पास एकत्र हो गई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में आकर गृहस्थी लोगों ने प्रार्थना की, श्री महाराज जी! आप बड़े-बड़े जंगलों में हो आये हैं, किन्तु अभी तक आपको इस प्रकार के सिद्ध योगिराज जी नहीं मिले होंगे, जैसे महात्मा सन्तराम की सराय में आकर बैठे हैं। वह तीन दिन से बिल्कुल निराहार हैं और पत्थर की मूर्ति की तरह से बैठे हैं न हिलते हैं न डुलते हैं। चलिए, आपको भी उनके दर्शन करा लावें। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया, भाई! हमें रहने दो, तुम्हीं दर्शन कर आओ। जब तीन रात्रि से बैठे हैं तो अच्छे तो हैं ही। किन्तु लोगों ने बड़ी भारी हठ की। लोगों के मन में यह भावना थी कि उस महात्मा को देखकर श्री गुरुदेव जी आश्चर्यचकित हो जावेंगे और कहेंगे कि हाँ, यह तो कोई अवश्य सिद्ध योगिराज है। किन्तु बात कुछ और ही थी। श्री प्रभुजी उन लोगों के आग्रह करने पर सन्तराम की सराय में गये। जहाँ वह महात्मा समाधि लगाकर बैठे हुए थे धीरे से उनके पीछे आकर खड़े हो गए। लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि और लोग सामने खड़े हैं और यह पीठ के पीछे खड़े हैं। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि महात्मा के शरीर में एक कम्पन पैदा हुआ। उस कम्पन के साथ उनके प्राण-कोष ब्रह्माण्ड से नीचे आ गये। महात्मा चेतन होकर जाग उठे और बड़ी तीव्रता के साथ खड़े होकर परम करुणार्णव मेरे श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में गिर पड़े और चरणों से लिपट गये। महात्मा इतने रोये कि श्री प्रभुजी के बहुत समझाने पर भी उनके आँसू बन्द नहीं होते थे। श्री प्रभुजी ने उनको दोनों हाथों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा—बेटा! रोते क्यों हो? मैंने ही तुमको सत्पथ में बुलाया है, तुम्हारी समाधि अपूर्ण थी, आज से वह पूर्ण हो जाएगी और तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जावेगी। आसन गमन आदि सब ठीक हो जायेगा। महात्मा ने बड़ी कठिनता से श्री प्रभुजी से हाथ जोड़कर प्रार्थना की। हे सर्वशक्तिमान! मेरे रोने का केवलमात्र एक ही कारण है। मैं आपका मन्द बालक हूँ। तीन दिन तीन रात मेरी कठोर परीक्षा के बाद आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मैं तड़पता रहा चरणारविन्दों के दर्शन के लिए, किन्तु आपके चरणारविन्द में बहुत से स्त्री-पुरुषों का जमघट होने के कारण मैं नहीं आ सका और आप दर्शन देने के लिये नहीं आये। आज मेरा यह शुभ दिन है। पता नहीं कौन से पुण्य प्रारब्ध से प्राणिमात्र के अन्तर्द्रष्टा श्री प्रभुजी! आपने आकर मुझे कृतार्थ किया है। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को कुछ समय अपने पास रखकर हिमालय भेज दिया। जो लोग श्री प्रभुजी के साथ सन्तराम की सराय में गये थे, उनके आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं रहा। वह लोग भली प्रकार जान गये कि इस विप्र वेष में छिपे यह अवश्य कोई सर्वसमर्थ महापुरुष हैं। यह पहली घटना थी जिससे कुछ सर्वसाधारण लोग मेरे गुरुदेव के स्वरूप को कुछ-कुछ समझने लगे। यहीं से ही शक्तिपात और सब प्रकार के योग प्रचार का कार्य आरम्भ हुआ। मेरे गुरुदेव ने इस जीवन में क्या-क्या कार्य किया वह शनैः शनैः इस पत्र में प्रकाशित होता रहेगा और पाठकगण समझते रहेंगे कि सद्गुरुदेव कौन होता है और उनके कार्य किस प्रकार के हुआ करते हैं?

सनातन पुरुष
योगाधिपति महाप्रभु रामलाल जी महाराज

✽ आचार्य ब्र० दामनाल शर्मा

यत्कृपयैव कैवल्यम् विनोपायैः प्रलभ्यते ।
चिदानन्दं रामलालं सद्गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥

अर्थात्, जिनकी कृपा से बिना अन्य उपायों के ही दुर्लभ कैवल्य पद सुलभ हो जाता है उन सच्चिदानन्द स्वरूप सद्गुरु महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज को बार-बार प्रणाम करता हूँ।

सर्वशक्तिमान ईश्वर अपने ही अंश से सृष्टि की उत्पत्ति, पालन एवम् संहार करते हैं। ईश्वर का अर्थ है 'ईशनशील इच्छामात्रेण जगदुद्धरणक्षमः' ईशनशील अर्थात् इच्छामात्र से सम्पूर्ण जगत के उद्धार में समर्थ। इसी सामर्थ्य के कारण ही उनकी प्रतिज्ञा है कि सृष्टि के अन्त में सब प्राणियों का मैं उद्धार कर दूँगा। योग दर्शन में इसी ईश्वरीय तत्त्व को सद्गुरु तत्त्व से अभिहित किया है जो कालातीत है तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि का भी गुरु कहलाता है। वे सर्वसमर्थ सद्गुरु अपने अंशभूत प्राणियों पर दया करने के लिए अज्ञानान्धकार में भटके हुये, ताप-पाप से विदग्ध होते हुए जीवों को ज्ञान का प्रकाश देकर अपनी ओर खींचते रहते हैं, इसी के लिये उनका समय-समय पर पृथ्वी आदि लोकों में आविर्भाव होता रहता है।

इस घोर कलिकाल में उसी सद्गुरु-तत्त्व ने भक्त एवम संस्कारी बच्चों को संसार सागर से उभारने के लिये नित्य सिद्धलोक से उतरकर मानव के मध्य आने का संकल्प लिया। अमर विद्या योग का प्रचार प्रसार करने के लिए यौगिक विभूति का अवलम्ब लेकर निर्माणकाय विधि से अनेक योग देह का निर्माण किया। उनके इस प्रकार के निर्माणकाय सिद्धान्त का प्रमाण श्रुतियों में पाया जाता है।

एकधा तद्द्विधा भवति
त्रिधा चैव बहुधा पुनः
योगीश्वरः शरीराणि
करोति विकरोति च
कैश्चिद् सेवेत्तविषयान्
कैश्चिद् उग्रं तपश्चरेत्
संहरेत पुनस्तानि
सूर्यो रश्मिगणानिव ।

अर्थात्, योगीश्वर एक दो तीन अथवा अनेक शरीर निर्माण करते हैं किन्हीं शरीर से राजादि बनकर विषयों का सेवन करते हैं तथा किन्हीं शरीरों से उग्र

तपस्या करते हैं पुनः अपनी इच्छा से उन शरीरों को समेट लेते हैं जिस प्रकार से सूर्य अपनी किरणों को समेट लेता है।

इस युग में जिस शरीर का वरण करके सद्गुरु सत्ता ने असंख्य पतितों को पावन बनाया उस करुणामूर्ति श्री विग्रह का नाम महाप्रभु श्री रामलाल है। यद्यपि उन्होंने असंख्य शरीर धारण किये किन्तु सम्पूर्णता से कोई भी इस रहस्य को नहीं जान सकता। जीवनधन हमारे सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी अपने श्रीमुख से बतलाया करते थे कि जब प्रभुजी नेपाल हिमालय से अवनी-मण्डल पर आये तब उन्होंने योग की अमर ज्योति को फैलाने के लिए चालीस शरीर बनाये। इस प्रकार के बनाये निर्मित शरीर को पुण्य देह की संज्ञा दी गई है। यह शरीर विशुद्ध सत्वांश से निर्मित पूर्णतया विकार-वासना रहित देह होता है न ही ऐसे शरीर को कर्मबन्धन बांधते हैं। योग सत्ता का प्रमाण देने के लिए योगियों के ऐसे शरीर का वर्णन कहीं-कहीं मिलता है। महासिद्ध भगवान कपिल ने अपने होनहार आसुरि नामक मुनि को निर्माण काय से प्रकट होकर सांख्य योग का उपदेश दिया था।

अखिल लोक पावन महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज सच्चे अर्थों में सद्गुरु हैं। सद्गुरु उसे कहते हैं जो अपने बालक शिष्य के अष्टपाश को अपनी करुणा कृपा से काट दे। जरा, जन्म, मृत्यु, व्याधि, काम, क्रोध, मोह (अविद्या) एवं अहंकार ये आठ पाश जीव को जकड़े हुए हैं। पूर्ण सद्गुरु ही इन पाशों के काटने में समर्थ होता है। शिष्य के परम कल्याण सम्पादन करने के कारण ही उसे शिव कहते हैं। सद्गुरु तत्व निस्त्रैगुण्य शुद्ध ब्रह्म तत्व है। गीता में भगवान ने सद्गुरु तत्व का ही प्रकाशन किया है। यह सद्गुरु चराचर प्राणियों के भीतर बाहर सर्वत्र विद्यमान है। 'अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्' यह सद्गुरु तत्व यद्यपि अविभाज्य है तथापि योगमाया के कारण विभक्त जैसा प्रतीत होता है। समस्त देवी देवता उस परम तत्व की वन्दना करते हैं। सद्गुरु विभिन्न रूपों में स्थित हैं तभी तो योगीगण वन्दना करते हैं। "घटाकाश मुक्त गुरुदेव नमामि" सब प्राणियों के घट के भीतर आत्म रूप से अवस्थित गुरुदेव को नमस्कार है। 'महाकाश रूपं गुरुदेव नमामि' अखिल ब्रह्माण्ड ही जिनका देह है ऐसे विराट रूप गुरुदेव को नमस्कार है। 'चिदाकाश व्याप्तं गुरुदेव नमामि' चैतन्य रूप से सब प्राणियों को चेतनायुक्त बनाने में सक्षम होने वाले गुरुदेव को नमस्कार है। गुरुदेव के ऐसे चैतन्य व्यापक सद्गुरु सत्ता को सभी साधक, योगी, देवता, सिद्ध निरन्तर नमन करते हैं। 'गुरुरादिरनादिश्च' गुरु आदि भी हैं अनादि भी हैं तथा आदि-अनादि से भी परे हैं। सद्गुरु की श्रुतियों में 'भूमा' संज्ञा है 'भूमा' का अर्थ व्यापक तथा अनन्त है। ऐसे भूमा एवं सनातन तत्व के विषय में सम्पूर्णता से कौन जान सकता है? 'विज्ञातारम् अरे केन विजानीयात्' जो सबको जानने वाला है उसे कौन जान सकता है जो सबको अपनी ज्योति से प्रकाशित कर रहा है उसका प्रकाशन कौन कर सकता है? किन्तु सद्गुरु जिसको जिसके

लिये अपने को प्रकाशित करना चाहे उसका प्रकाशन में आ जाते हैं अन्यथा 'योगमाया समावृत' के अनुसार अपनी योगमाया से अपने को ढके रहते हैं। श्री प्रभुजी की अपनी आध्यात्म सृष्टि है जो संस्कारी जीव येन-केन प्रकारेण उनके अध्यात्म साम्राज्य में पहुँच जाते हैं, उनका योग क्षेम सद्गुरु स्वयं वहन करते हैं। उनके आदि, मध्य, जीवन एवं मरण के नियामक वे ही होते हैं। अपने भक्तों को सहज ही स्थिति, गति एवम् मुक्ति के प्रदान करनेवाले हैं, काल व यमराज भी वहाँ हस्तक्षेप नहीं कर सकता। जिस जीव के अन्तःकरण में उनकी दिव्य चेतना मूर्ति विराजती है उनका लोक और परलोक मंगलमय ही रहता है। ऐसे परम करुणा-स्वरूप गुरुदेव को 'तारक ब्रह्म' कहा जाता है दुर्गम भवसागर से पार करने वाले गुरुदेव ही होते हैं।

श्री प्रभुजी ने धराधाम पर आकर सिद्ध-योग का पुनः प्रचार-प्रसार किया। सिद्धयोग का अर्थ है पूर्ण सिद्ध, सद्गुरु के संकल्प से चलने वाला योग। इस परम्परा में सिद्ध गुरु के संकल्प मात्र से शिष्य की प्रसुप्त शक्ति जाग्रत हो जाती है, अनायास ही दिव्य शक्तियों का प्रादुर्भाव शिष्य में होने लगता है। ईशित्व वशित्व के स्वामी सद्गुरु समस्त प्राणियों के मन और बुद्धि पर शासन करने वाले होते हैं। समस्त स्थूल व बुद्धि आदि सूक्ष्म प्रकृति के नियामक गुरुदेव होते हैं। जिस प्रकार सद्य-प्रसूता गौ बछड़े का अनु-गमन करती है उसी प्रकार से सम्पूर्ण प्रकृति योगी सद्गुरु की इच्छा का अनुगमन करती है। गुरुदेव के अमोघ संकल्प से साधक का सम्पूर्ण जीवन-चक्र संचालित होता है। गुरु-देव अपने प्रिय शिष्य को जीवन के हर क्षण, हर स्थल पर एवं हर वस्तु में अपनी व्याप-कता एवं विद्यमानता का बोध कराते रहते हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय सभी अवस्थाओं में गुरुदेव की व्यापक सत्ता का अनुभव साधक को गुरुदेव अपने योगैश्वर्य से कराते रहते हैं। इस परम्परा की शृङ्खला में महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने धराधाम पर आकर ध्यान योग की ऊँची-ऊँची अवस्थायें अपने शिष्यों को प्राप्त कराई। कितनों को ही भूतजयी अजर-अमर बनाकर पर्वत कन्दराओं में बिठा दिया। जिसके बारे में संसारी लोगों को कोई ज्ञान नहीं है।

श्री आनन्दकन्द प्रभुजी के पावन चरणों में योग विभूतियाँ हर समय प्रकट रहती थीं। ध्यान योग के अभ्यास काल में वे अपने साधकों की परीक्षा के लिये कह दिया करते थे कि तुम अमुक के मन की क्या वृत्ति है इसे देखो, इसी प्रकार से दूसरे को किसी अन्य की चित्त वृत्ति को देखने के लिए आज्ञा देते थे। शिष्य लोग 'प्रत्ययस्य परचित्त ज्ञानम्' के नियमानुसार दूसरे के चित्त में उठने वाली वृत्ति का ध्यान योग से पता लगाकर श्री प्रभुजी को बता दिया करते थे। साधकों की शंका उपस्थित हो जाने पर श्री प्रभुजी कह दिया करते थे कि ध्यान में बैठकर वस्तु-स्थिति को जान लो। 'गुरोस्तु मौनव्याख्या-नम् शिष्यास्तु छिन्न संशयाः' की उक्ति के अनुसार शिष्यों के संशयों का निवारण गुरु-

देव उनके भीतर ही प्रकाशित होकर कर दिया करते हैं। श्री प्रभुजी योग प्रचार क्रम के अन्तर्गत किसी प्रकार का प्रवचन आदि नहीं देते थे। शिष्यों की भीतरी शक्ति को जागती स्वतः सद्गुरु शक्ति में ही बढ़ाते रहते थे, कहने-सुनने का अवकाश न के बराबर होता था। श्री प्रभुजी ने अपने कई योग-विभूति-सम्पन्न शिष्य योगजगत को दिये जिन्होंने सिद्धयोग को जन-जन तक पहुंचाने का अथक प्रयास किया। उनमें हमारे जीवनधन सद्गुरु श्री चन्द्रमोहनजी का सर्वोच्च स्थान है। जिन्हें योग जगत कभी भूल नहीं सकता।

श्री प्रभुजी भवरोग के कुशल व सच्चे वैद्य हैं। कलियुग के जीव स्वभावतः अल्प वीर्य एवं अल्प प्राण वाले हैं। अतः उन्हें योग एवम् सिद्धयोग का अधिकारी बनाने के लिये श्री प्रभुजी ने कुछ अनुपम क्रियाओं का उद्घाटन अपने मन से किया। जिनमें जीवन तत्त्व साधन की क्रियायें मुख्य हैं। इन क्रियाओं के नियमित अभ्यास से मानव में जीवनी शक्ति का निश्चय ही विकास होता चला जाता है। अभ्यास के करते-करते साधक स्वतः ही अन्नमयकोष से भीतर प्राणमय कोष एवं मनोमय कोष में प्रवेश पा जाता है। इन क्रियाओं के करते हुए साधक को विशेष प्राणायाम तथा मुद्राओं के अभ्यास की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। इन क्रियाओं के अभ्यास से ही नाड़ी शोधन आदि प्रक्रिया स्वतः ही सम्पन्न हो जाती है। इन क्रियाओं के अभ्यास से साध्यासाध्य सभी प्रकार के रोगी स्वस्थ हो जाया करते हैं तथा शनैः शनैः योग के अधिक उन्नत हो जाया करते हैं। अमृतसर के शान्तिआनन्द बंगाली का दृष्टान्त हमारे सामने है। श्री प्रभुजी वस्तुतः पतित पावन हैं जहाँ भी 'यस्य प्रसादात् पतितास्तु पावना भवन्ति संसार सुतारणा जिनाः' जिनकी कृपा से पतित भी पावन हो जाते हैं तथा वे ही पावन होकर संसार के तारने वाले बन जाते हैं। श्री प्रभुजी ने उमरी जैसी पतिता नारी का उद्धार तो किया ही साथ ही ऐसी दिव्य स्थिति दे डाली जिसके फलस्वरूप वह देवी रूप हो गई। योग के योगियों के इतिहास में ऐसे उदाहरण सुनने-देखने को नहीं मिलते हैं। कलियुगी प्राणी अधिक पापमय वृत्ति वाले होते हैं किन्तु श्री प्रभुजी पतित अपतित का विचार नहीं करते, करें भी कैसे? क्योंकि वे सबके सुहृद एवम् मित्र हैं। घुमा-घुमा के भटका आने शिष्यों को ढूंढ-ढूंढकर उनके कल्याण में लगे रहते हैं। कलियुग में जितने भी विभूति सम्पन्न योगी महापुरुष हुए हैं उनके इतिहास को देखा जावे तो स्पष्टतः हम पाते हैं कि श्री प्रभुजी की करुणा कृपा उसके मूल में अवश्य है। वस्तुतः देखा जावे तो वर्तमान युग का सम्पूर्ण अध्यात्म जगत श्री प्रभुजी के अखण्ड तेज से आलोकित हो रहा है। योग केसरी अपने सद्गुरुदेव स्वनाम श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपनी सिद्ध वाणी से उद्घोष किया करते थे कि सारे संसार को योग का दिव्य प्रकाश श्री सिद्ध गुफा से मिल रहा है। अपने श्री गुरु से यह भी कहा करते थे कि एक समय आयेगा जब श्री प्रभुजी का स्वरूप घर-घर विराजमान होगा। आगरा में यह

काल आज सत्य होती दिखाई दे रही है। श्री प्रभुजी अपने संसारी भक्तों को किस प्रकार से अपने अभय चरणों में खींच रहे हैं, हर व्यक्ति इस बात को नहीं समझ सकता। कितनों को ही श्री प्रभुजी अब भी प्रकट होकर योग दीक्षा दे रहे हैं, ध्यान व साधना का उपदेश दे रहे हैं। अपने भक्तों का कष्ट निवारण करने के लिये अनेक रूप धारण कर कष्ट दूर करते हैं। अपनी महिमा का विस्तार व अभूत सिद्धयोग का प्रचार-प्रसार वे अपनी ही दिव्य शक्ति से कर रहे हैं। अपने ही कृपा से सद्गुरु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के रूप में योग का आलोक चतुर्दिक फैलाकर लाखों को सिद्धयोग साधना में आरूढ़ कर दिया है।

योग नर से नारायण बनने की विद्या है। यह परमात्मा का स्वरूप प्रदान कराने वाला है। श्री प्रभुजी ने योग के साथ-साथ हम लोगों को सिद्धयोग दिया, यह दोनों मिलकर महायोग बन जाता है। इस महायोग के अवलम्ब से ही जीवन दिव्य अविनाशी बनता है। जहाँ पर भी योग की चर्चा उठती है, आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का तत्क्षण स्मरण हो जाता है। श्री प्रभुजी योगमूर्ति होकर विराजते हैं, अतः योग से अभिन्न हैं। इस योग को अव्यय अथवा अविनाशी पद से कहा जाता है। जैसे परमात्मा शाश्वत है उसी तरह उनकी यह शक्ति 'योग' नाम से शाश्वत है। हम सबके जीवन को योग गङ्गा से पावन बनाने वाले करुणामूर्ति आनन्दकन्द महाप्रभु श्री रामलाल जी को हमारा कोटि-कोटि प्रणाम है।

सबके साथ आत्मवत् व्यवहार करो

❀ सब पर दया करो, सबके दुःखों को अपना दुःख समझो, सबके सुखी होने में ही सुख का अनुभव करो, परन्तु ममता और अहंकार से सदा बचे रहो।

× × ×

❀ शरीर के किसी भी अङ्ग में सुख-दुःख की प्राप्ति होने पर जैसे उसका समान भाव से अनुभव होता है, वैसे ही प्राणिमात्र के सुख-दुःख की प्राप्ति में समता रक्खो, अपने को समष्टि में मिला दो।

× × ×

❀ आत्मशरीर में पर-भावना (दूसरे का है ऐसी भावना) करो, और दूसरों में आत्मभावना करो, तभी तुम दूसरों के सुख-दुःख में सुखी-दुःखी हो सकोगे, और तभी तुम उनके लिए अपना सर्वस्व त्याग सकोगे। —शिव

अमर सद्गुरु

महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज

ले० श्री ओमप्रकाश जी पालीवाल

योगविद्या संसार की सर्वोपरि उपलब्धि है। भारतवर्ष इस पवित्र योग विद्या का उद्गम् केन्द्र है। इस योग विद्या के कारण ही भारत विश्व गुरु व उसका नेतृत्व करने वाला रहा है। आध्यात्मिक भारत को जानने के लिए पहले भारत के योगियों को जानना होगा और योगियों को जानने के लिए उनके द्वारा बताये हुए योग मार्ग का अनुसरण करना होगा। आज विश्व में भारतवर्ष की यदि कोई उसकी पहचान है तो वह योग और योगियों के कारण ही है।

योग और योगिराज ही भारत की वह अमूल्य निधि है जो चिरकाल से गुरु परम्परा द्वारा आज भी अपने स्वरूप को बनाए हुए है। पराधीनता के काल में योग विद्या प्रायः लुप्त हो रही थी, परन्तु उस समय भी भारत की वसुन्धरा ने एक ऐसी योग विभूति, महान् अमर सद्गुरु, अनादि सिद्ध को उत्पन्न किया जिन्होंने न केवल योग विषय पर प्रकाश डाला बल्कि स्वयं उसे व्यवहार रूप में ग्रहण कर चिर लुप्त योग विद्या को पुनः जाग्रत किया। ऐसे महान योगावतार, अमर सद्गुरु को आज संसार योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के नाम से जानता है। इस दिव्य योग विभूति का अवतरण पंजाब की पवित्र भूमि अमृतसर में श्रीराम-नौमी के शुभ दिन ब्रह्ममुहूर्त में हुआ था। योगी सद्गुरुओं का भूमण्डल पर अवतरण जग मंगल, लोक कल्याण के लिए ही हुआ करता है। उनके अवतरण का मुख्य हेतु साधु प्रकृति के जीवों का उद्धार व उनकी सुरक्षा, मनुष्य की दुष्ट प्रवृत्तियों का नाश तथा धर्म की स्थापना है। गोस्वामी जी भी कहते हैं—

संत उदय संतत सुखकारी।
विश्व सुखद जिमि इन्दु तमारी॥

अर्थात् जिस तरह सूर्य और चन्द्र अन्धकाराच्छन्न जगत को अपने आलोक से सुख पहुँचाते हैं ठीक उसी तरह योगी सद्गुरु अपने प्रखर ज्ञानालोक से अज्ञान अन्धकार में भूले भटके जगत को सत्य का मार्ग दिखाकर सुखी करते हैं।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के परम सौभाग्यशाली ज्योतिष विद्या के गणमान्य विद्वान महामान्य पं० गण्डाराम जी पूज्य पिताजी थे तथा भाग्यवन्ती श्री माताजी थी। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।" के अनुसार श्री प्रभुजी ने मात्र चार साल की अल्प आयु में ही अपने माता पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराया तथा ६ साल की उम्र में मरणासन्न बूढ़ी पड़ौसिन के सिर पर हाथ रखकर उसको सद्गति प्रदान की और एक ग्रामीण कुम्हार के बालक के सिर पर हाथ के स्पर्श से दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना आदि कार्य श्री प्रभुजी के जन्मजात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। इसके अतिरिक्त वन की यात्रा में भी कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी लगभग बारह या चौदह वर्ष तक ही बालक्रीड़ा करते हुए घर पर रहे, इसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े। साधु-सन्त समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करते हुए उन्हें कहीं कहीं भी कोई पहुँचा हुआ सन्त मिला। वह श्री प्रभुजी को पहचानकर उनकी स्तुति करता तथा उनसे कृपा की भीख माँगता। इसी प्रकार श्री प्रभुजी अन्त में नेपाल देश की राजधानी काठमाण्डू पहुँचे, काठमाण्डू से ऊपर जहाँ वागमती गंगा का उद्गम है वहाँ से कुछ दूर झारखण्ड में रहकर घोर तपस्या की और वहीं पर एक दिन स्वयं सदाशिव स्वरूप एक महापुरुष आये जो श्री प्रभुजी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से उड़ाकर ले गये और वहाँ पर एक स्थान दिखाकर कहा "तुम यहीं पर रहो" यह कह कर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर समाधिस्थ हो गये। उस स्थान से लगभग ६-७ मील की दूरी पर एक महापुरुष और रहते थे, श्री प्रभुजी विचरते हुए उन महापुरुष से जाकर मिले। उन्होंने बताया कि यह महापुरुष सदाशिव हैं और कई हजार वर्षों से यहाँ बैठे हैं। यही सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं। ये छः माह में सिर्फ एक बार ही समाधि से उठते हैं। श्री प्रभुजी की भी समाधि उन महापुरुष के संकल्प मात्र से कई दिन की लगने लगी। वस्तुतः यही सद्गुरु-तत्त्व की महत्ता है जिसमें सामर्थ्यवान गुरुदेव के संकल्प मात्र से काम होता है। इस प्रकार श्री प्रभुजी १२ वर्ष तक हिमाच्छादित शिखरों पर समाधिस्थ रहे। वहीं पर बैठे हुए वहीं से श्री प्रभुजी ने संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दुखी जीवों को देखकर करुणा सागर के मन में करुणा के भाव उमड़े जिसके फलस्वरूप श्री कृपा निकेतन भू-मण्डल पर लौट आए और प्राणीमात्र के भले व कल्याण के लिए इस पवित्र सिद्ध योग मार्ग के प्रसार का पवित्र कार्य आरम्भ किया।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने भूमण्डल पर आकर मुख्य तीन प्रकार के कार्य किये—

(१) योग के सच्चे साधकों जीवन तत्व के द्वारा रोगों की निवृत्ति करना।

(२) अमर तत्व साधन द्वारा राजयक्ष्मा (टी० बी०) का इलाज करना। नेति, धौति, वज्रोली, खेचरी आदि यौगिक गोपनीय क्रियाओं को कराना।

(३) तथा सबसे बड़ा कार्य शक्तिपात दीक्षा द्वारा साधकों को योग सिद्ध बनाना। इस प्रकार श्री प्रभुजी अनादि महासिद्ध पूर्ण योगेश्वर थे जिन्होंने संसार में आकर शक्तिपात दीक्षा देकर सैकड़ों को योग-सिद्ध बनाया, तत्व विज्ञानी बनाया तथा कितने ही श्री प्रभुजी का कृपा प्रसाद पाकर षट्चक्रों का भेदन करके लोक-लोकान्तरों में गमन की शक्ति वाले बन गये। श्री प्रभुजी सिद्धों के महासिद्ध, सर्वसमर्थ सद्गुरु व सर्वत्र परिपूर्ण योगेश्वर हैं, उनकी पवित्र ख्याति व उनके योग ऐश्वर्य को बहुत ही कम संस्कारी लोगों ने ही जाना है। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी अपने काया निर्माण द्वारा निर्मित लगभग २० शरीरों से विभिन्न नाम रूप से आज भी अपना कार्य कर रहे हैं। श्री प्रभुजी का मूल शरीर ज्यों का त्यों नेपाल हिमालय में समाधिस्थ है।

काकनाड़ी संहिता में श्री प्रभुजी के प्रति की गई भविष्यवाणी :—

आज से लगभग ८ लाख वर्ष पूर्व त्रेता युग के भीतर महामुनि श्री काक भुशुण्डि जी

द्वारा रचित नाड़ी ग्रन्थ में जो मद्रास नगर सैदापेट स्थित कौमार नाड़ी ज्योतिषालय में उपलब्ध काक नाड़ी संहिता में श्री प्रभुजी के प्रति की गई भविष्यवाणी में इस प्रकार वर्णन किया गया है। "सम्वत् १९४५ चैत्र शुक्ल नवमी तिथि दिन गुरुवार ६४ घड़ी ५६ पल वृषभ लग्न में कलियुग में पंजाब प्रान्त के अमृतसर नगर कौंला भाई सन्तसिंह में शुद्ध ब्राह्मण कुल में पण्डित श्री नन्दाराम जी (ज्योतिषी) के गृह में माता भाग्यवन्ती जी के गर्भ से गुरुओं के गुरु और प्रभुओं के प्रभु का जन्म प्रातः काल के शुभ ब्रह्म मुहूर्त में चार बजे होगा। जिसका शुभ नाम पण्डित रामलाल जी महाराज होगा। यह जीवों को लोक परलोक के ऐश्वर्य देने में समर्थ महाप्रभु हैं। अष्ट सिद्धियों एवं नव-निधियों के स्वामी हैं। सभी प्रकार की सिद्धि शक्तियों के अधिपति हैं।

सांसारिक जीवों के प्रारब्ध को अपने ऊपर लेकर तथा भुगतान कर उनको भी अपनी पदवी देने में सहायक महाप्रभु हैं। ये जगत की रक्षा के लिए अवतार लेने वाले महाप्रभु हैं। कलिकाल में अज्ञान, अन्धकार तथा भोग प्रवृत्ति बढ़ने पर योग मार्तण्ड रूप पावन दिव्य योग ज्योति प्रगट होगी। इस दिव्य ज्योति में अवतार के समस्त दिव्य धर्म विद्यमान हैं। इनके कारण माता-पिता को सौभाग्य प्राप्त होगा। अल्प काल में इनके अन्दर समस्त विद्याओं का प्रकाश होगा। अतिशीघ्र ही इन्हें स्वयं भगवान सदाशिव (आदिगुरु) गुरुरूप में प्राप्त होंगे। ये अपनी योग शक्ति से एक समय में अनेक स्थानों में अनेक रूपों में प्रगट होंगे। योग सिद्धि की पराकाष्ठा से अनेक शरीरों में स्वेच्छा से प्रवेश करना, योग बल से संसार का कल्याण करना आदि गुण होंगे।

श्री रामलाल जी का अवतरण अति पवित्र आत्माओं के उद्धार के निमित्त योग मार्तण्ड स्वरूप, अष्टाङ्ग योग प्राणायाम के रूप में होगा। ५१ वर्ष में ये अपना कार्य पूर्ण करके शरीर त्याग की लीला संसार को दिखाकर द्वितीय दिव्य शरीर से हिमालय में निवास करेंगे। परमेश्वर में इनमें कोई भेद नहीं है। श्रद्धा भक्ति से इस महापुरुष का ध्यान मन्त्र जप करने वालों पर इनकी कृपा दृष्टि सदा बनी रहेगी और अन्त में काक भुशण्डि जी पार्वती जी से कहते हैं कि और इससे अधिक इस महापुरुष के प्रति मैं क्या कह सकता हूँ। जब तक सूर्य चन्द्र है तब तक यह महापुरुष कल्पान्त तक प्रकाशित होंगे।"

श्रीराम नवमी का अध्यात्म स्वरूप—

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जी का जन्म श्रीराम नौमी को हुआ था और इसी दिन श्री प्रभुजी का जन्म होना पूर्ण परात्पर ब्रह्म होने का परिचायक है। श्री प्रभुजी का अवतार पंजाब प्रान्त के अमृतसर नगर में हुआ। अध्यात्म की भाषा में पंजाब शब्द का अर्थ पञ्च भौतिक सृष्टि में या पञ्च भौतिक शरीर में ब्रह्म का अवतरण है। इसी प्रकार अमृतसर शब्द का अर्थ हुआ अमृत का सरोवर। वह परब्रह्म जन्म-मरण से रहित अमृत रूप ही है। इसी प्रकार श्री प्रभुजी भी जन्म-मरण से रहित अमृत रूप ही हैं तो ऐसे अमृत स्वरूप श्री प्रभुजी की जन्म भूमि अमृतसर अथवा अमृत सरोवर में होना स्वाभाविक ही है। श्री प्रभुजी का जन्म शुद्ध परम पवित्र सत्त्व-प्रधान ब्राह्मण कुल में हुआ है। अध्यात्म दृष्टि से देखें तो उस परब्रह्म का मूल वंश ब्राह्मण ही है। योग मार्तण्ड रूप से प्रगट होने वाले प्रभु रामलाल जी सूर्यवंशी श्रीराम की भांति ही सूर्यवंशी हैं। श्रीराम के प्राकट्य के लिए जिस भाव भूमि की अपेक्षा है वह गोस्वामी जी की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ प्रतीक

अथवा तिथि नवमी ही हो सकती है। अध्यात्म दृष्टि से एक से लेकर आठ तक के अंक मानो अष्टधा प्रकृति के परिचायक हैं। क्योंकि प्रकृति का विस्तार आठ अंक तक ही होता है और उसके पश्चात नव के रूप में उन्हें पूर्ण ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। गोस्वामी जी ने कहा भी है—

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी।
ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥

गोस्वामी जी के "**शब्दब्रह्म** परब्रह्म मयी" का परिचय देने के लिए नौ से अधिक कोई उपयुक्त अंक नहीं है और भगवान की प्राप्ति के लिए जिस भक्ति साधना की अपेक्षा है वह भक्ति भी नवधा भक्ति की सम्पन्नता में भगवान की प्राप्ति या गुरु भगवान की प्राप्ति का परिचायक है। सद्गुरु के रूप में भगवान का अवतार वस्तुतः इस नवद्वारपुर (शरीर) को धन्य बनाने के लिए ही होता है। इस नवद्वार पुरी अयोध्या (शरीर) की धन्यता नवमी के दिन प्रभु राम की अभिव्यक्ति कर लेने में ही है। उस शरीर रूपी गृह की सार्थकता ही क्या जिसमें भगवान प्रभु राम का अवतरण न हो। श्रीराम नौमी हमें अपने नवद्वारपुर (शरीर) में प्रभु राम को प्रगट कर इसे सार्थक बनाने का शुभ सन्देश देती है। शुक्ल पक्ष में श्री रामलला का प्राकट्य हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है।

श्री प्रभुजी का नाम रामलाल है। श्रीराम नवमी को प्रकट होने वाले रामलला ही तो प्रभु रामलाल हैं। प्रभुजी के नाम राम शब्द में 'र' 'अ' और 'म' ये तीन शब्द हैं ये तीन शब्द बीजाक्षर हैं। 'र' रकार अग्नि बीज है। यह मन की मलिनता और शुभाशुभ सभी कर्म फलों को भस्म करने वाला है, मुक्तावस्था के लिए यह नितान्त वांछनीय है। 'अ' अकार सूर्य बीज है। यह समस्त वेद, शास्त्र ज्ञान को प्रकाशित करता है और अपने तेज से मन के मोह और उससे उत्पन्न होने वाले अज्ञानान्धकार को नष्ट करता है। 'म' मकार चन्द्र बीज है। यह त्रिविध सन्तापों की रूप तापों को दूर कर शीतलता प्रदान करता है। वेदों के प्राण तत्व योगियों के ईश्वर 'ओम' में जैसे 'अ' में ब्रह्मा, 'उ' में विष्णु 'म' में महेश की अवस्थिति है ठीक इसी तरह 'राम' शब्द में रकार ब्रह्ममय है अकार विष्णुमय है तथा मकार शिव स्वरूप है। त्रिगुणात्मक ब्रह्म स्वरूप मनोरम राम में ही वह परात्पर परम गुरु शिव रमण करते हैं। बीजाक्षरों की स्वतन्त्र शक्ति और उनके मिश्रण से उत्पन्न विशिष्ट शक्ति जप, तप ध्यान और अनुष्ठान से प्राप्त होती है। आज्ञा चक्र का बीज ओंकार है। परशिव का वाचक ओम है।

योगीजन समाधि में जब ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं तो उन्हें इसी ओम की ध्वनि सुनाई देती है। इसी कारण से योगियों ने ईश्वर का नाम 'ओम' बताया है। यह सोऽहं शब्द भी ओंकार मकार मात्र में ही उच्चारित होता है। समस्त प्राणियों में आत्मरूप रूप से जो रमण करता है उसी को राम कहते हैं। अब राम के बाद लाल शब्द का अर्थ अध्यात्म भाषा में इसको लाल रतन धन कहा है। इसी लाल को पाकर मनुष्य लालों का लाल, मालामाल और निहाल हो जाता है। और इसी राम रूपी लाल को गंवाकर खोकर मनुष्य कंगाल हो जाता है। इस प्रकार हमारे दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ही परात्पर ब्रह्म गुरुओं के गुरु मुक्ति शान्ति और मोक्ष के दाता हैं। योगीजनों के ईश्वर हैं और परम आश्रय के दाता हैं। हम सब इन्हीं लाल रूपी राम को प्रभु रामलाल को अपने हृदय में धारण करके परम कल्याण के भाजन बन सकते हैं। ★

जगत्पिता आदि शिव

-: महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज :-

❀ श्रीमति कविता शर्मा

देवो गुणत्रयातीतश्चतुर्व्यूहो प्रभु रामलालः,
सकलः सकलाधारशक्तेरुत्पत्ति कारणम् ।
सोऽयमात्मा त्रयस्यास्य प्रकृतेः पुरुषस्य च,
लीलाकृतजगत्सृष्टिरीश्वरत्वे व्यवस्थितः ॥

अर्थात् चतुर्व्यूह के रूप में प्रकट देवाधिदेव प्रभु रामलाल तीनों गुणों से अतीत है वे सब की आधारस्वरूपा शक्ति के भी उत्पत्ति के कारण हैं। वे ही प्रकृति और पुरुष दोनों की आत्मा हैं। लीला से खेल ही खेल में वे अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना कर देते हैं। जगन्नियन्ता ईश्वर रूप में वे ही स्थित हैं।

आज मनुष्य एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा में इस कदर अन्धाधुन्ध भाग रहा है कि उसको यह भी पता नहीं कि उसकी मंजिल किस ओर है। वह भाग दौड़ में थोड़ा बहुत धन एकत्र कर भौतिकता का आनन्द प्राप्त कर सकता है, जिह्वा का स्वाद प्राप्त कर सकता है मगर वह उसका जीवन नहीं वास्तविकता से काफी दूर जो उसे चाहिए वह है। मगर मनुष्य का उस तरफ ध्यान जाता ही नहीं या यों कहें कि वह उस परम सत्य का ध्यान करने की फुर्सत ही नहीं पाता। हम सभी मानते हैं और विश्वास भी करते हैं कि कहीं न कहीं ऐसी शक्ति है जो इस संसार का ही नहीं अपितु अखिल ब्रह्माण्ड का संचालन करती है। हम यह मानकर चलते हैं कि भगवान है और जब पाप बढ़ जाता है या जब इस धरती पर कोई विपदा आती है तो स्वयं भगवान ही किसी न किसी रूप में अवतरित होते हैं और पुनः धर्म की स्थापना कर इस मृत्युलोक से चले जाते हैं।

जब तक वह दिव्य शक्ति साधारण मानवों के बीच विद्यमान रहती है उसकी पहिचान कर पाना अत्यन्त कठिन होता है। उसे पहिचानने की क्षमता सामान्य मनुष्य की आँखों में नहीं होती। यदि कोई उसे देखना चाहे, पहचानना चाहे तो उसे सर्वप्रथम अपनी आँखों से भौतिकता का, स्वार्थ का पर्दा हटाना होगा और यह पर्दा इतनी आसानी से हटने वाला भी नहीं है क्योंकि यह तो कई-कई जन्मों से पड़ा हुआ है।

आज तक जितने भी युगपुरुष हुए, योगी हुए, महात्मा हुए उन्हें कौन पहचान पाया? कोई नहीं। आदिशिव ने महाप्रभु रामलाल के रूप में इस धरा पर अवतरण लिया, उन्हें कौन पहचान पाया? कोई नहीं। क्योंकि सबकी आँखों पर स्वार्थ का पर्दा पड़ा था।

हमारे समाज में यदि बोलबाला है तो केवल झूठ का, छल का, पाखण्ड का और यह जाल इतना फैल गया है कि अगर हम

इसमें से निकलना भी चाहे तो निकल नहीं पाते क्योंकि मानव अकेला तो कुछ कर ही नहीं सकता, उसको इस जाल में छटपटा कर दम तोड़ना है और अपने इस जीवन का अन्त कर देना है जो कि बड़ी मुश्किल से प्राप्त होता है।

मानव जीवन को तो देवता भी पाने के लिए लालायित रहते हैं और प्रकृति की रचना का आनन्द भोगना चाहते हैं। फिर मनुष्य ही इस जीवन को बरबाद क्यों करता है? यह मात्र उसका ही दोष नहीं है क्योंकि जब एक आत्मा इस पृथ्वी पर जन्म लेती है तब एक कोरे कागज की तरह होती है। अगर इसके पीछे कुछ होता है तो उसके द्वारा किये गये पूर्वजन्म के कर्म, पाप, पुण्य होते हैं जो कि उसे इसी जन्म में चुकाने होते हैं।

इस दुर्लभ देह को पाकर मानव इस संसार में लोभ, लालच, मोह-माया, रागद्वेष, छलकपट के मायावी जाल में उलझकर अपना सारा जीवन व्यतीत कर देता है। कभी सोचा भी नहीं कि इस दुर्लभ जीवन को यों ही गँवाने से फायदा क्या है? इस धरती पर क्यों आए हैं। हमें अपने सोए हुए व्यक्तित्व को जगाना है और इस अन्धकार को दूर भगाना है जो हमारे चारों तरफ फैला हुआ है। उन पाप-दोषों से मुक्ति लेनी है जो हमारा कई जन्मों से पीछा नहीं छोड़ रहा है। आखिर कब पीछा छुड़ा सकते हैं इस अन्धकार से? कैसे पीछा छुड़ा सकते हैं इस मायावी जाल से? कैसे मुक्ति पा सकते हैं इन पाप-दोषों से? आखिर कोई तो ऐसा होगा जो हमें इन सबसे मुक्ति दिला सके। आखिर कोई तो होगा जो हमें इन अँधेरों से उजाले की ओर ले जा सके।

वह कौन है जिसमें इतनी प्रबल शक्ति है जो हमें इन पापों से मुक्त कर इस जीवन को सद्गति प्रदान करेगा? हमारी आँखें जो भौतिकता की चकाचौंध में उलझकर रह गई हैं उसे नहीं देख पाती, मिला नहीं पाती उस महान संचालक से, जो पूरे ब्रह्माण्ड का संचालन करता है आखिर कौन है वह?

इसका जवाब एक ही है, हमें उस शक्ति की शरण आना होगा जो हमारी समस्याओं का समाधान कर सके, हमें उस परम सत्य का ज्ञान करा सके और वह शक्ति इस संसार में केवल "आदिशिव महाप्रभु रामलाल" ही हैं, जिन्होंने समस्त प्राणियों को चेतना देने के लिए अपनी योगमाया अथवा प्रकृति का आश्रय लेकर इस धरा पर अवतार लिया। आदिशिव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज आदिकाल से ही मानव को आध्यात्मिक चेतना व जागृति प्रदान करने के लिए कई-कई रूपों में इस धरा पर अवतार लेते रहे हैं। कभी सद्गुरु श्री रामलाल जी के वेष में, कभी पण्डित वेष में और कभी योगी के रूप में।

सद्गुरु श्री महाप्रभु जी की महिमा का बखान तो क्या करें हमसे तो गुरु शब्द की महिमा का भी बखान नहीं होता।

जो गुरु शब्द का गूढ़ार्थ समझते हैं उनके शरीर में गुरु शब्द को सुनते ही एक बिजली की सी लहर दौड़ने लग जाती है, एक अजीब तरह की शक्ति का संचार मन में होने लगता है।

गुरु के बिना इस देह की, इस जीवन की मुक्ति सम्भव ही नहीं है। यह देह जो सांसारिकता में लिप्त है, गुरु ही उसे सत्यता का बोध करा सकते हैं। गुरु ही हमें इस अन्धकार से निकाल कर प्रकाश की ओर ले जा सकते हैं अपने ज्ञान से, अपने तप से,

अपनी परमशक्ति के बल से। जब शिष्य अपने आप में "गुरुतत्व" को समाहित कर लेता है तब गुरु रूपी नाव ही उसे इस संसार रूपी भव से पार करती है। गुरु में ही वह प्रबल शक्ति है जो दर्शन करा सकती है उस महान संचालक के जो पूरे ब्रह्माण्ड का संचालन करता है।

बुद्ध, ईसा, कृष्ण, राम को तो हम लोगों ने देखा नहीं है मगर जो-जो दिव्य शक्ति, आदिशक्ति इस संसार में आई वह अपना कार्य कर चली गई। उनको हम या हमारे पूर्वज पहिचान ही नहीं पाये। कृष्ण कभी युद्ध में, कभी प्रेम के क्षेत्र में तो कभी जगद्गुरु के रूप में नये-नये आयाम स्थापित करते रहे और एक नवीन चेतना प्रदान की। उसी प्रकार महायोगी श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने इस संसार के दुखों और तनावों को कम करने के प्रयास में अपना जीवन बलिदान कर दिया, मगर इन दिव्य शक्तियों ने अपना भेद नहीं खोला। उनकी अपनी कोई मर्यादा अथवा कारण नहीं हो सकता है लेकिन मानव की कोई मर्यादा अथवा कारण नहीं होता। वह तो मात्र स्वार्थवश ही उस दिव्यता को समझने का प्रयास नहीं करता।

एक विराट व्यक्तित्व इस युग में वर्तमान पीढ़ी के मध्य था लेकिन हम उन्हें एक सामान्य मानव समझकर ही उनसे अपेक्षा कर रहे थे क्योंकि उन्होंने स्वयं ही अपने आप को धोती और कुर्ते से ढक लिया था।

महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज जिनकी देवता भी वन्दना करते नहीं थकते। ऋषि-मुनि उनको पाने के लिए सारा जीवन जंगलों और गुफाओं में व्यतीत कर देते हैं उस दिव्य शक्ति की मात्र दर्शन पाने के लिये।

हमें उस विराट शक्ति के दर्शन बिना जंगलों में गये, बिना कठोर तपस्या सहज में ही उपलब्ध हुए। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि जो हमें सहज में ही प्राप्त होता है, प्रायः उसकी कीमत नहीं आंकी जाती। जो व्यक्तित्व हमें सद्गुरु के रूप में सहज ही प्राप्त हो गया है, वह "आदिशक्ति" देवताओं को भी अन्त में प्राप्त नहीं होती।

जो स्वयं ही ऋद्धि-सिद्धि के मालिक हैं प्रत्येक जीव जिनसे उत्पन्न होता है और जिनमें विलीन भी होता है, वे ही "प्रभु" कभी साधना में रहते हैं तो कभी शिष्यों के बीच अपनी लीला का आनन्द लेते हैं। भक्त की विह्वल पुकार पर श्री प्रभु स्वयं ही इस भूलोक पर "सद्गुरु" रूप धारण कर अवतरित हुए और ऐसा हर एक कल्प के बाद होता है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं।

गीता में स्पष्ट कहा है—

"यदा यदा हि धर्मस्य
ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य
तदात्मानं सृजाम्यहम्॥"

अर्थात् जब जब धर्म की हानि होती है, पृथ्वी पर पाप, अत्याचार बढ़ते हैं तब तब धर्म की पुनर्स्थापना के लिए उस "परम सत्ता" को पृथ्वी पर अवतरित होना ही पड़ता है। सम्भव है मेरे इन तथ्यों पर कोई विश्वास करे या न करे क्योंकि "सत्य" जो स्वयं "श्री प्रभुजी" का नाम रूप है, उससे कोई नहीं बच सकता। यदि कोई इस मायाजाल को तोड़ सकता है, तो वह उस परब्रह्म के दर्शन सहज ही प्राप्त कर सकता है क्योंकि "श्री प्रभु" तो स्वयं सरलता का प्रतीक हैं और सहज रूप में ही भक्तों के कल्याण के लिए

इस भू-लोक पर अवतरित हुआ है आदि शिव के रूप में।

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदाम्
त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
सः भीमरूपः प्रभुरामलाल इत्युदीर्यते,
न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः॥

अर्थात्, प्रभु श्री रामलाल परम दरिद्री होकर भी समस्त सम्पत्तियों के उद्गमकर्ता हैं। सब सम्पत्तियाँ वहीं से प्रकट होती हैं। वे श्मशान वासी होकर भी तीनों लोकों के नाथ हैं। भयानक रूप में रहने पर भी उनका नाम आदिशिव प्रभु रामलाल है और सच तो यह है कि वे क्या हैं, यह तत्व कोई नहीं जानता, इसको जान लेना आदिशिव प्रभु रामलाल की कृपा पर ही अवलम्बित है। आदिशिव जगन्नियन्ता जगदीश्वर हैं।

एक प्रसंग में पार्वती जी श्री शंकर भगवान से कहती हैं कि आप जगद्गुरु हैं और मंगल शिरोमणि हैं। आपके दिव्य चरणों का ब्रह्माजी, भृगु नारदादि महर्षिगण भी ध्यान करते हैं फिर आप महाप्रभु की वन्दना क्यों करते हैं? इस पर भगवान शिव मुस्कराते हुए बोले—मुझे बनाने वाले भी वस्तुतः वही हैं। यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाये तो समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में "आदिशिव तत्व" ही व्याप्त है। शिव आदिशिव एक हैं पर अनेक रूप भी उन्हीं के हैं। अपने अलग-अलग नामों से वे इस संसार में विराजमान हैं। कभी आशुतोष, तो कभी महादेव तो कभी रुद्र तो कभी पशुपति, कभी महामृत्युञ्जय तो कभी प्रभु रामलाल। उनका एक भी नाम निरर्थक नहीं है। प्रत्येक नाम के अलग गुण और प्रयोजन हैं जिनके अवतरित होने का यदि मूल देखा जाये तो अधिकांश नामों से भवनिवृत्ति, मोक्षलाभ और सौभाग्य लाभादि हो सकते हैं जो इस प्रकार हैं:—

आदिशिव—जो भक्तों के समस्त पाप और त्रिताप को नाश करने में सदैव समर्थ हैं।

पशुपति—आदि शिव सबको ज्ञान देने वाले हैं, अज्ञान से बचाने वाले हैं, मुक्ति दिलाने के कारण ही वे "पशुपति" कहलाते हैं।

मृत्युञ्जय—यह सुप्रसिद्ध बात है कि मृत्यु को कोई जीत नहीं सकता किन्तु जिन्होंने मृत्यु पर भी जय प्राप्त की हो और जिनके आगे हर बार मृत्यु की ही पराजय होती है वे "मृत्युञ्जय" कहलाते हैं।

महेश्वर—जो वेदों के आदि में "ओम् कार" रूप में निर्गुण रूप में माने गये हैं और वेदान्त में निर्गुण रूप में स्थित रहते हैं और जो सम्पूर्ण देवताओं में प्रधान होने से "महेश्वर" नाम से विख्यात हैं।

रुद्र—दुःख और उसके समस्त कारणों के नाश करने में तथा संहारादि में क्रूर रूप धारण करने से उन्हें "रुद्र" कहा जाता है।

आशुतोष—अपने आनन्दित और उल्लसित स्वरूप के कारण ही वे "आशुतोष" कहलाते हैं।

जिस उपाधि से जैसा स्वांग भरते हैं, उस समय उनका वैसा ही नाम पड़ जाता है। संसार सृजन करने पर वे "ब्रह्मा" कहलाते हैं, पालन करने पर "विष्णु" तो संहार करने पर वे शिव कहलाते हैं।

तारक देव आदिशिव हैं,
सबका तारनहार।
तम् सत् रज के रूप में,
व्यापित है संसार॥

आदिशिव महाप्रभु की ऐसी विराट महिमा है इस व्यापक जगत में। जो लोग नाना दुःखों से पूर्ण संसार रूपी समुद्र के प्रवाह में पतित होकर पुनः उससे निकलना चाहते हैं उन्हें महाप्रभु की आराधना करनी चाहिये। हे देवी! इसलिए हम उनकी वन्दना करते हैं।

"नेपाल शिखरेरम्ये
नाना रत्नसुशोभिते।
नाना द्रुमलता कीर्णे
नाना पक्षिभियुते
सर्वत्र कुसुमामोद
मोदिते सुमनोहरे
शैत्य सौगन्ध्यमान्द्यादि
मरुद्भिरुपवीजिते
अप्सरो गणं संगीत,
कलध्वनि निनादिते
स्थिरच्छायाद्रुमच्छायाच्छादिते
स्निग्ध मञ्जुले
सर्वदा स्वगणे
सार्धमृतुराज निषेविते
सिद्धचारण गन्धर्वैः
गणापत्यगणैः वृते
तत्र मौन धरोदेवः
चराचरजगद्गुरुः॥"

अर्थात् नाना प्रकार के रत्नों से सुशोभित विविध प्रकार की लताओं और वृक्षों से आच्छादित जिस नेपाल पर्वत पर अनेक प्रकार के पक्षी मधुर कलरव करते रहते हैं। विभिन्न ऋतुओं की ही भाँति जहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्प खिलते रहते हैं। जिनसे स्पर्श कर शीतल व सुगन्धित चित्त को अद्भुत आल्हाद देने वाली वायु प्रवाहित होती है, जहाँ के वृक्षों की शीतल छाया अविरल स्निग्धता प्रदान करने वाली है, जहाँ अप्सराओं के द्वारा गेय संगीत की मधुर लहरियाँ निनाद कर रही हैं, केवल एक कोकिला ही नहीं वरन् समूह में कोकिलायें मदोन्मत्त स्वर में ध्वनि कर रही हैं। ऋतु अपने अनुचरों के साथ जिस पर्वत की सेवा करता है, जहाँ सिद्ध गन्धर्व गाणपत्य सदा निवास करते हैं, वहीं संसार के चराचर के "जगद्गुरु श्री महाप्रभु जी" मौन धारण किए विराजमान हैं।

मनोबुद्ध्यहंकार चित्तानि नाहं,
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायु
प्रभु रामलाल रूपः शिवोऽहं शिवोऽहं॥१॥

न च प्राणसंज्ञो न वै पञ्चवायु
न वा सप्तधातुर्न वा पञ्चकोशः।
न वाक्पाणिपादं न चोपस्थपायू
प्रभु रामलाल रूपः शिवोऽहं शिवोऽहं॥२॥

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्षः
प्रभु रामलाल रूपः शिवोऽहं शिवोऽहं॥३॥

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं,
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
प्रभु रामलाल रूपः शिवोऽहं शिवोऽहं॥४॥

न मृत्युर्न शंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता च जन्म।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यः
प्रभु रामलाल रूपः शिवोऽहं शिवोऽहं॥५॥

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो,
विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्
न चासंगतं नैव मुक्तिर्न मेयः
प्रभु रामलाल रूपः शिवोऽहं शिवोऽहं॥६॥

भगवान शिव के मुख से कहे गये वचन उनके अनादि होने का साक्षात् प्रमाण हैं। भगवान आदि शिव से अधिक पूज्य कौन अन्य देव है। औदार्य, सरलता, क्षमा, करुणा और ऐश्वर्य के अधिपति भगवान आदिशिव के समान कोई भी अन्य देवता नहीं। योग और भोग को एक साथ धारण करने का सामर्थ्य किसी भी देव में तो नहीं। विषपान कर लेने की घटना ही भगवान आदिशिव को जन-जन के मानस में अपनी पहुँच बनाये हुए है। महाप्रभु आदिशिव ही गुरु रूप में इस धरा पर अवतीर्ण होते रहे हैं। इसीलिए गुरु साक्षात् आदिशिव ही कहे गये हैं।

"एक एव तदा प्रभो रामलालः
न द्वितियोऽस्ति कश्चन।
संसृष्ट्य विश्वभुवनं
गोप्तान्ते संचुकोच यः॥"

अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में केवल मात्र आदिशिव प्रभु रामलाल ही विद्यमान हैं दूसरा कोई नहीं। वे ही इस जगत् की सृष्टि करके उसकी रक्षा करते हैं और अन्त में स्वयं ही सबका संहार भी कर देते हैं।

सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में प्रभु श्री रामलाल के जितने रहस्यमय रूप लक्षित होते हैं, उतने किसी अन्य देवता के लक्षित नहीं होते। प्रभु आदिशिव का रहस्य हजारों साल पहले भी था, जब आर्यों ने ऋतु का सिद्धान्त प्रतिपादित किया और एक ऐसे सर्वव्यापक ईश्वर की कल्पना की जो सम्पूर्ण सृष्टि का नियामक है।

ऋषियों ने प्रभु आदिशिव को 'सर्वमान्य स्वरूपाय सर्वमन्त्राधिष्ठाय' कहकर उनकी स्तुति की है। वेदों, पुराणों तथा अन्यान्य साहित्यिक ग्रन्थों में आदिशिव के जिन रूपों का परिदर्शन होता, वे मानव जाति के इतिहास में श्रद्धा के विकास के क्रमिक सोपान हैं। पुरुषसूक्त में "सहस्त्रशीर्षापुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्" के रूप में प्रभु आदि शिव के जिस विराट रूप की कल्पना की गई है, उससे यह सिद्ध होता है कि वे ब्रह्माण्ड व्यापक देवता हैं। हजारों सिरों और हजारों पैरों से वे ब्रह्माण्ड में फैले हुए हैं और हजारों आँखों से सब कुछ देख रहे हैं।

वेदों में आदि शिव का रूप विज्ञानमय है। पुराणों में उपासना का रूप और साहित्यिक ग्रन्थों में उन्हें ज्ञान के पर्याय के रूप में स्थापित किया जाता है। वेदों में वर्णित निराकार, निर्विकार, चिन्मय स्वरूप में साकार उपासना का प्रतिमान है। संस्कृत में आदिशिव, शम्भु, ईश, पशुपति, रुद्र, शूली, महेश्वर, ईश्वर, शर्व, ईशान, शंकर, चन्द्रशेखर, महादेव, भूतेश, पिनाकी, खंड, परशु, गिरीश, मृड, मृत्युञ्जय, कृत्तिवास, प्रमथाधिप, धूर्जटि, कपर्दी, कमलेश्वर आदि अनेक पर्यायवाची नाम हैं।

इन समस्त नामों के पीछे प्रभु आदिशिव का जो स्वरूप उभरकर लोक प्रचलित रूप में सामने आता है, वह इस प्रकार है—उनके सिर जटाओं के जूट हैं। वे जटा जूट में गंगा और माथे पर चन्द्रमा धारण किये हैं। गले में, भुजाओं में भुजंग लपेटे हैं व शरीर में सर्वांग चिता की भस्म लगाते हैं।

ऋग्वेद के सूक्तों में प्रभु आदिशिव को अग्नि और वायु के समान देवता माना गया है। यजुर्वेद और अथर्ववेद तक आते-आते आर्य मेधा ने आदिशिव को ब्रह्माण्ड नायक के रूप

(शेष पृष्ठ ४७ पर पढ़िए)

योग एवं गुरुदेव

श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री

यद्यपि सभी प्रकार की लौकिक विद्यायें गुरु के माध्यम से ही प्राप्त की जाती हैं। बिना गुरु के मनुष्य किसी भी विद्या में पारंगत नहीं हो सकता। अक्षरारम्भ से लेकर गणित, विज्ञान, शिल्प, संगीत, मशीनरी तथा यान्त्रिकी आदि सभी विद्यायें अनुभवी शिक्षक ही सिखाते हैं; किन्तु योगमार्ग तो है ही गुरुगम्य। अतः इस मार्ग में गुरु की विशेष आवश्यकता रहती है। बिना गुरु के इस मार्ग में चलना तो दूर रहा हम एक कदम भी नहीं रख सकते। हम बाहरी संसार के विषय में बहुत कुछ जान सकते हैं किन्तु अपने बारे हमें कोई भी स्पष्ट जानकारी नहीं होती कि हम क्या हैं और क्या बन सकते हैं? अपने दोषों का, मनोभूमि का, आत्मिक स्तर का एवं प्रगति का हमें स्वयं पता नहीं चलता। अन्तर्द्रष्टा अनुभवी गुरुदेव ही इस बात को जानते हैं कि साधक का आत्मिक स्तर क्या है, उसके अन्दर क्या गुण-दोष हैं तथा किस प्रकार से उसका कल्याण हो सकता है? इन सभी बातों पर विचार करते हुए तथा उसके पूर्व जन्म के संस्कारों को देखकर वे उसके लिए वही मार्ग प्रशस्त करते हैं जिस पर वह आसानी से चलता हुआ परम कल्याण का भागी बन सके।

यहाँ यह कहना अत्युक्ति न होगी कि योगी सद्गुरु त्रिकालदर्शी हुआ करते हैं वे साधक के वर्तमान जन्म के बारे में ही नहीं बल्कि उसके हजारों पूर्व के और आगे होने वाले जन्मों के बारे में अपनी योग शक्ति से जान लिया करते हैं। योग मार्ग के पथिक के लिये अनुभवी गुरु का मार्ग दर्शन नितान्त आवश्यक है, उसीके सहारे आध्यात्मिक जगत की यात्रा सुविधापूर्वक होती है। अन्यथा बिना मार्ग दर्शन के योग मार्ग पर चलना तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलने के समान है। कठोपनिषद का वचन है—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत् ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति ॥

अरे मनुष्यो! तुम लोग जन्म-जन्मान्तर से अज्ञानरूपी निद्रा में सोये हुए थे। अब भी समय है। उठो, जागो और महापुरुषों की शरण में जाकर उनके उपदेश द्वारा अपने कल्याण का मार्ग और परमात्मा का रहस्य समझ लो। परमात्मा का रहस्य बड़ा गहन है। उसकी प्राप्ति का मार्ग तलवार की तेज धार पर चलने के समान है। ऐसे दुस्तर मार्ग से सुगमतापूर्वक पार होने का उपाय वे अनुभवी महापुरुष ही बता सकते हैं जो उस मार्ग को स्वयं पार कर चुके हैं।

उपनिषदों में गुरु-शिष्य परम्परा का स्थान-स्थान पर वर्णन किया गया है। सद्गुरु के लक्षण, सत् शिष्य के लक्षण तथा गुरु के प्रति शिष्य के कर्तव्य आदि पर प्रकाश डालते हुए इस सिद्धान्त का निर्णय किया गया है कि श्रद्धालु, जिज्ञासु, साधन-परायण,

संयमी एवं गुरुभक्त साधक ही योग की अमर निधि को पा सकता है। जैसे :—

गुह्याद् गुह्यतरमेषा न प्राकृतायोपदेष्टव्या ।
सात्त्विकाय अन्तर्मुखाय परिशुश्रूषवे ॥

(महावाक्योपनिषद्)

ब्रह्मविद्या का साधारण पुरुषों को उपदेश नहीं करना चाहिये। क्योंकि यह अत्यन्त गोपनीय है। सात्त्विक वृत्ति वाले, अन्तर्मुखी तथा अपने गुरुदेव की सेवा में निरत मनुष्य को इसका उपदेश करना चाहिये।

श्रद्धालुर्मुक्ति मार्गेषु वेदान्त ज्ञान लिप्सया ।
ईपायनकरो भूत्वा गुरुं ब्रह्मविदं व्रजेत् ॥
सेवाभिः परितोष्येनं चिरकालं समाहितः ।
सदा वेदान्तवाक्यार्थं शृणुयात्सुसमाहितः ॥

(नारदपरिव्राजकोपनिषद्)

मुक्तिमार्ग में श्रद्धा रखने वाले साधक को चाहिये कि वह वेदान्त का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखता हुआ हाथ में समिधा लेकर किसी सद्गुरु की शरण में जावे और चिरकाल तक सेवा करके उन्हें सन्तुष्ट करे और एकाग्रचित्त होकर उनसे वेदान्त वाक्यों को सुने व समझे।

सत्कर्मविपाकतो बहूनां जन्मनामन्ते नृणां मोक्षेच्छा जायते ।
तदा सद्गुरुमाश्रित्य चिरकालसेवया बन्धमोक्षं कश्चित् पृच्छति ॥

(पैङ्गलोपनिषद्)

जब सत्कर्मों के परिपाक से अनेक जन्मों के पश्चात् मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति की इच्छा होती है तब वह किसी सद्गुरु की शरण में जाकर चिरकाल तक उनकी सेवा करके बन्धन से छुटकारा पाकर मोक्ष को प्राप्त होता है।

तद्विज्ञानार्थं सः गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

(मुण्डकोपनिषद्)

जिज्ञासु साधक को चाहिये कि वह परमेश्वर का वास्तविक तत्व ज्ञान प्राप्त करने के लिये हाथ में समिधा लेकर श्रद्धा और विनय के साथ ऐसे सद्गुरु की शरण में जाय जो वेदों के रहस्य को भलीभाँति जानते हों और परब्रह्म परमात्मा में स्थित हों।

जिज्ञासु तथा मुमुक्षु साधक को सर्वदा सन्तों की सेवा में रत रहना चाहिए। स्त्री, पुत्र, घर, धन सब कुछ उन्हें अर्पण कर देना चाहिये। गुरु से बढ़कर अन्य कुछ भी नहीं है। जिसके द्वारा यह सारा संसार जाना जाता है उन श्री गुरुदेव से बढ़कर दूसरा और कौन हो सकता है? इस तथ्य को भलीभाँति समझकर व्यक्ति निश्चित ही मुक्त हो जाता है।

(स्व संवेद्योपनिषद्)

जहाँ गुरु है, वहीं शिव हैं। गुरु और शिव स्वरूप ही यह महेश्वर है। भ्रमर कीट सिद्धान्त द्वारा यह प्रसिद्ध है कि भृङ्गी नामक कीड़ा अन्य कीड़ों को पकड़कर जब अपने घर में बन्द कर देता है तो वे कीड़े भय के कारण निरन्तर उस भृङ्गी का ध्यान करते रहने से भृङ्गी जैसे ही बन जाते हैं। ठीक इसी प्रकार शिवस्वरूप गुरुदेव का निरन्तर ध्यान करने से साधक मुक्त हो जाते हैं। शिवलिंग का अभिषेक करने से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। ठीक इसी प्रकार गुरु के अभिषेक से तथा चरणामृत पीने से अनेक जन्मों के पाप धुल जाया करते हैं। गुरु में प्रेम रखना ही शिव से प्रेम करना है। गुरु के समीप रहना ही परम पवित्र वास है। अतः शिव की शरण लेनी चाहिये, गुरु की शरण लेनी चाहिये।

(रुद्रोपनिषद्)

गुरु जो भी आदेश दें उसका पालन शिष्य को बिना सोचे-विचारे अत्यन्त सन्तोष पूर्वक करना चाहिये। साधक इस विद्या को गुरु से प्राप्त करे तथा गुरुदेव की सदा सेवा सुश्रूषा करता रहे। वेदों में कहा गया है कि गुरु ही साक्षात् हरि हैं। यह विद्या उसी को देनी चाहिये जो गुरु का सच्चा भक्त हो, नित्य भक्ति परायण रहे। अन्य किसी को नहीं देनी चाहिये। यदि कोई देता है तो देने वाला नरकगामी बनता है और लेने वाले को भी किसी प्रकार की सिद्धि नहीं मिलती।

(ब्रह्मविद्या उपनिषद्)

जो शिक्षा प्राप्त करके भी मन, वाणी और कर्म से अपने गुरुजनों का आदर नहीं करते हैं उसके अन्न को कल्याणकामी व्यक्ति कभी ग्रहण नहीं करते। न गुरु और यती ही उस कृतघ्न के अन्न को खाते हैं।

गुरु ही परम धर्म है, गुरु ही परम गति है। एकाक्षर के ज्ञानदाता गुरु का जो सम्मान नहीं करता उसकी विद्या, उसकी तपस्या और उसका ज्ञान धीरे-धीरे क्षीण होकर ऐसे समाप्त हो जाता है, जैसे कच्चे घड़े में जल समाप्त हो जाता है।

(शाट्यायनीयोपनिषद्)

गुरुदेव का वास्तविक स्वरूप क्या है? सद्गुरु के बाह्य लक्षण क्या हैं तथा गुरु-निष्ठ साधक अपनी गुरुभक्ति के बल पर किस प्रकार अपने सभी मनोरथों को सिद्ध करता हुआ परम कल्याण का भागी बन जाता है? इस सम्बन्ध में अद्वयतारकोपनिषद् में कहा गया है :—

आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः।
योगज्ञो योगनिष्ठश्च सदा योगात्मकः शुचिः॥
गुरुभक्ति समायुक्तः पुरुषज्ञो विशेषतः।
एवं लक्षणसम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते॥

वेद सम्पन्न आचार्य, ईश्वर भक्त, मत्सरता रहित, योग का ज्ञाता, योग में निष्ठा वाला, योगात्मा, पवित्र रहने वाला, गुरु भक्त तथा परमात्मा में विशेष रूप से लीन रहने वाला इन लक्षणों से युक्त महापुरुष गुरु कहलाता है।

गु शब्दस्त्वन्धकारः स्यात् रु शब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकार निरोधित्वात् गुरुरित्यभिधीयते॥

गुरुरेव पराकाष्ठा गुरुरेव परा गतिः ।
यस्मादुपदेष्टासौ तस्माद्गुरुतरो गुरुरिति ॥
यः सकृदुच्चारयति तस्य संसारमोचनं भवति ।
सर्वजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति, सर्वपुरुषार्थ सिद्धिर्भवति ।
य एवं वेद इत्युपनिषद् ॥

(अद्वयतारकोपनिषद्)

'गु' शब्द का अर्थ है—अन्धकार और 'रु' शब्द का अर्थ है—रोकने वाला । अन्धकार का निरोधी होने के कारण गुरु कहलाता है ।

गुरु ही परब्रह्म है, गुरु परम गति है गुरु ही पराविद्या है, गुरु ही परायण योग्य है, गुरु ही पराकाष्ठा है और गुरु ही परम धन है । वह गुरु उपदेश करने वाला होने के कारण श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है । गुरु शब्द का उच्चारण करने मात्र से मनुष्य का संसार सागर में छुटकारा हो जाता है, सब जन्मों के पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं, सब कामनायें पूरी हो जाती हैं और सब पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं । जो इस प्रकार जानता है वह उपनिषद् का ज्ञाता है ।

गुरुकृपा ही साधक के कल्याण का एकमात्र साधन है । यह स्पष्ट करते हुए महोपनिषद् में कहा गया है—

दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्वदर्शनम् ।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना ॥

सद्गुरु की कृपा के बिना विषयों का त्याग करना सम्भव नहीं है, तत्व ज्ञान की प्राप्ति दुर्लभ है और सहजावस्था को प्राप्त करना भी अत्यन्त दुर्लभ है ।

जो साधक श्रद्धालु हो, अनन्य गुरुनिष्ठ हो । गुरुदेव तथा ईश्वर में समबुद्धि रखता हो, साधन परायण हो और जितेन्द्रिय हो वही व्यक्ति तत्व ज्ञान एवम् सद्गुरु कृपा का अधिकारी है ।

गीता में अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीकृष्ण का यह पवित्र वचन है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ॥

मुण्डकोपनिषद् का भी यही कथन है :—

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय येनाक्षरं
पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥

गुरु को चाहिये कि वे अपनी शरण में आये हुए ऐसे शिष्य को जिसका चित्त पूर्णतया शान्त हो चुका है, जो सांसारिक भोगों के प्रति विरक्त है तथा जिसने अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियों को भलीभांति वश में कर लिया है, ब्रह्मविद्या का तत्वविवेचन पूर्वक उपदेश करे जिससे वह शिष्य नित्य, अविनाशी, परब्रह्म पुरुषोत्तम का ज्ञान प्राप्त कर सके ।

शिव संहिता में भगवान सदाशिव ने इस बात की पुष्टि की है कि गुरु मुख से प्राप्त की हुई विद्या ही फलवती हुआ करती है तथा गुरु कृपा ही साधक के कल्याण का मूल स्रोत है।

भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्र समुद्भवा।
अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यति दुःखदा॥
गुरुं सन्तोष्य यत्नेन ये वै विद्यामुपासते।
अवलम्बेन विद्यायाः तस्याः फलमवाप्नुयुः॥
गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो न संशयः।
कर्मणा मनसा वाचा तस्मात्सर्वं प्रसेव्यते॥
गुरु प्रसादतः सर्वं लभ्यते शुभमात्मनः।
तस्मात्सेव्यो गुरुर्नित्यं नान्यथा शुभमाप्यते॥
न भवेत्संग युक्तानां तथा विश्वासिनामपि।
गुरुपूजाविहीनानां तथा च बहुसंगिनाम्॥
मिथ्यावादरतानां च तथानिष्ठुरभाषिणाम्।
गुरु सन्तोषहीनानां न सिद्धिः स्यात्कदाचन्॥

गुरुदेव के मुखारविन्द से प्राप्त की हुई विद्या ही वीर्यवती (फलवती) हुआ करती है। अन्यथा गुरूपदेश के बिना किया गया योगाभ्यास निष्फल चला जाता है, उसमें साधक के अन्दर शक्ति का अनुत्थान नहीं होता और उसकी वह साधना अत्यन्त कष्टप्रद भी होती है। जो साधक भक्तिपूर्वक गुरुदेव की सेवा एवं उनके आज्ञापालन से उन्हें सन्तुष्ट करके योगविद्या का अभ्यास करते हैं वे उसका फल प्राप्त कर लेते हैं। गुरु ही पिता हैं, गुरु ही माता है और गुरु ही देवता हैं। इसलिये कर्म से, मन से और वाणी से श्री गुरुदेव की सेवा करनी चाहिए। उनकी सेवा से सबकी ही सेवा हो जाती है। गुरु कृपा से साधक का सब प्रकार से आत्म-कल्याण हो जाता है। अन्यथा कल्याण प्राप्ति नहीं होती।

संसार में आसक्त रहने वाले, ईश्वर तथा शास्त्रों में विश्वास न करने वाले, गुरु पूजा न करने वाले, विविध मत-मतान्तरों में तथा सांसारिकता में संलिप्त जनसमुदाय में रुचि रखने वाले, व्यर्थ के वाद-विवाद में पड़े रहने वाले, कठोर वाणी बोलने वाले और गुरुदेव को सन्तुष्ट न करने वाले लोगों को इस योगमार्ग में कभी भी सफलता प्राप्त नहीं होती।

★ कोटिक-कोटि प्रणाम ★

❀ श्री अशोक त्रिवेदी (झाँसी)

महा प्रभु श्री रामलाल, हृदय बसो म**म**
प्रकटे योग प्रकाश, मन मिटे घोरतम
हाथ रखो सिर पर मेरे, हे प्राणेश्वर म**हा**
करदो मुझको निहाल, योग सरिता बहा
प्रणव रूप महाकालेश्वर, बन आये वि**प्र**
कीन्हों उनका उद्धार शरण जो आये क्षिप्र
भूपति, दीन-दयाल, योगिराज प्र**भू**
"सिद्धयोग" के दाता, छिम सरताज प्रभू
राखन भक्तन की लाज, नर तन रूप ध**रा**
गरल कण्ठ में धार, भक्तन का कष्ट हरा
महा योग योगेश्वर का, धन्य है पावन धा**म**
"सिद्धगुफा सवाई" धाम को बारम्बार प्रणाम
लाखों के पतवार बने, तुम दीन दया**ला**
अपनी शरणागत लेकर, तुमने किया उजाला
लखो मेरे गुण-दोष, समर्पित जीवन जा**ल**
करुण कृपा कर करुणाकर, करदो निहाल
जीवन नैया के रखवाले, मेरे प्रभू **जी**
एक सहारा तेरा केवल मुझको प्रभुजी
मन रमा रहे चरणों में निशि दिन आठों या**म**
स्वांसों की हर धड़कन में, प्रकटे प्रभू का नाम
हार गया हूँ जग से, मैंने तुम्हें न **हा**
तुम बिन झूठे जग में, मैं फँसा रहा
राम रूप विश्वेश्वर, त्रेता रूप ध**रा**
योग सुधा बरसा कर उपवन किया हरा
जग तो बारम्बार सिद्धों के योगिरा**ज**
कोटिक-कोटि प्रणाम है, श्री रामलाल महाराज

वर्तमान योग के अमरविद्या के प्रचार-प्रसार में
महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की भूमिका

— डॉ० श्री जयनारायण राय

अखण्ड मण्डलाकार स्वरूप महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने हिमालय-नेपाल स्थित सदाशिव की सिद्धपीठ से किस-किस रूप में कार्य निर्वाण कर इस धरा पर अवतरित होकर अपने संस्कारी बच्चों में योग की अमरबेलि को पल्लवित किया, यह अकथनीय है। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि वर्तमान योग के अमरविद्या के प्रचार-प्रसार में महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का योगदान प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से रहा। सिद्धयोगी अपना कर्त्तव्य पूरा कर जाता है किन्तु किसी को उसका आभास नहीं होने देता है। यही कारण है कि प्रातः स्मरणीय योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज प्रायः अपने प्रवचनों में यदा-कदा संकेत दिया करते थे कि महाप्रभु जी भिन्न-भिन्न रूपों को धारण कर अपने विशिष्ट संस्कारी बच्चों में शक्तिपात के माध्यम से योग की अजस्र धारा प्रवाहित कर दिया करते थे; जो योग के मिशन को आगे बढ़ाने में अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वाह किये।

इसी क्रम में प्रसंग आता है कि महाशय श्यामाचरण लाहिड़ी को सरकारी कार्य से रानीखेत जाने का अवसर मिला। रानीखेत पहुँचने पर उसके मन में धारणा बनी कि वह जंगलों का भ्रमण करें। अपनी इस धारणा के अनुसार जिस समय वह वन में गये तो उनको यह आवाज सुनाई दी—"लाहिड़ी आओ, तुम्हें गुरुदेव (महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज) याद कर रहे हैं, तुम बहुत दिनों के बाद आ रहे हो। लगभग ३२ साल से हम तुम्हारे आसन को सम्भाले हुए हैं।" महाशय लाहिड़ी कुछ दूर आगे बढ़े तो उनको दो तपस्वी साधु दिखायी दिये। महाशय लाहिड़ी का मन दोनों महात्माओं की ओर स्वभावतः आकर्षित होता जा रहा था और वे परिचित सा प्रतीत हो रहे थे, महाशय लाहिड़ी ने आगे बढ़कर अपने पिछले जन्म से सुरक्षित रखे जाने वाले आसन को देखा। उनको पहचान हुई कि यह आसन मेरा ही होगा।

लाहिड़ी महाशय को गुरुदेव के दर्शन की तीव्र लालसा मन में पैदा हुई। दोनों महात्मा लाहिड़ी महाशय को गुफा में ले गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपने पूर्व जन्म के गुरुदेव (महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज) के दर्शन प्राप्त किए। उस गुफा में खड़े हुए महाशय लाहिड़ी के मन में विचार घूमने लगा कि मैं अपने इन प्यारे गुरुदेव का पूजन सोने के मन्दिर में बैठा करके करूँ।

इस प्रबल इच्छा को भांपकर गुरुदेव ने कहा– बेटा लाहिड़ी ! तुम स्वर्ण मन्दिर में बैठकर दीक्षा लेना चाहते हो, अच्छा ऐसा ही हुआ जाता है। तुम दीक्षा के लिए तैयार हो जाओ। श्री गुरुदेव के मुख से इस प्रकार के वचन निकल जाने के पश्चात् महाशय लाहिड़ी ने देखा कि वहाँ रत्नों से जड़ित बड़ा भारी प्रकाशमय स्वर्ण मन्दिर स्वतः तैयार हो गया। गुरुदेव ने आज्ञा दी, अच्छा लाहिड़ी, तुम उसमें चले जाओ और इसमें बैठकर हमारा पूजन करो।

दिनांक २७ नवम्बर, सन् १८६१ को महाशय लाहिड़ी ने उस स्वर्ण मन्दिर में अपने गुरुदेव का पूजन किया, एक उच्चतम अध्यात्म प्रसाद प्राप्त किया। श्री गुरुदेव ने एक बार ही उनके सिर पर हाथ रखा और महाशय लाहिड़ी को सिद्धि-शक्तियों का भण्डार बना दिया। उसके बाद उनके दिव्यानुभव दिन-दूने रात चौगुने बढ़ने लगे और थोड़े समय के अन्दर ही वह पूर्ण योगी बन गए। महाशय लाहिड़ी गृहस्थाश्रम जीवन व्यतीत करते हुए करते हुए भी राजा जनक की भांति विदेह-वत् थे। इन्होंने बहुतेरे दिव्यानुभवी शिष्यों की शृंखला कायम की। महाशय लाहिड़ी ने अपने प्रिय शिष्य स्वामी श्री युक्तेश्वर गिरि को प्रेरित कर ब्रह्मचारी योगानन्द को विश्व स्तर पर योग-प्रचारके लिए तैयार करवाया। वर्तमान में अमेरिका के कैलीफोर्निया और भारत में रांची में योगदा सोसाइटी का मुख्यालय स्थापित कर इनके माध्यम से योग का प्रचार व प्रसार का कार्य चल रहा है।

महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने हिमालय-नेपाल के सिद्धपीठाधीश्वर सदाशिव की प्रेरणा पर अपना काय-निर्माण पंजाब प्रान्त के अमृतनगर कूचाभाई सन्तसिंह के शुद्ध ब्राह्मण कुल में पं० श्री गण्डाराम जी (ज्योतिषी) के गृह में माता भागवन्ती जी के गर्भ में किया और सन् १८८८ में इस धरा पर अवतरित हुए। महाप्रभु जी ने अपने अल्पकाल (४१ वर्ष) के शरीर यात्रा में भारत के विभिन्न पवित्र तीर्थों एवं स्थलों के भ्रमण में अनेक संस्कारी लोगों को शक्तिपात एवं दीक्षा देकर योगी बनाया। इस दिशा में योगीराज श्री गुलाबराज जी, ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी, शिवलीन अवधूत योगी श्री कुशलानन्द जी, योगी श्री हरिहरानन्द जी, अवधूत श्री अगडबाबा जी, योगी श्री रामकृष्ण वैरागी, श्री माणिकलाल जी दलाल, योगी अमरनाथ, योगी श्री नारायणदास, श्री नरसिंह मूर्ति आदि अपने ध्यानानुभव एवं कृतित्व से अपनी-अपनी अमिट छाप डाली। वहीं योगिनियाँ सीताजी, अन्नपूर्णानी शर्मा, महात्मा ऋषिदेवी जी, श्री द्रौपदी जी, श्री सरोज देवी आदि अपने-अपने क्षेत्र में पूजित हुईं।

इन सब योगी एवम् योगिनियों के दिव्यानुभवों एवम् कृतित्व को विस्तार न देते हुए यहाँ यह स्पष्ट करना है कि ऋषिकेश आश्रम में रहते हुए योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की एकाएक एकान्तवास की प्रबल इच्छा हुई। इस संकल्प को सर्वशक्तिमान अन्तर्यामी महाप्रभु जी ने अमृतसर में प्रवास काल में जान लिया और पत्र के माध्यम से सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी को उस समय रोका जबकि उनका दाहिना पैर आश्रम के मुख्य द्वार से निकला था कि उस समय पोस्टमैन ने महाप्रभु जी का पत्र सद्गुरुदेवजी को थमाया। उस पत्र में लिखा था कि "बेटा, हम बस्तियों में बैठे हैं और तुम वनों में जा रहे हो, उचित नहीं

है। जो कदम तुमने आगे बढ़ा लिया है, उसको पीछे हटा लो। अभी तुम्हें काफी सेवायें करनी हैं। बहुत बड़ा काम प्रभु तुमसे करायेंगे। इसलिए वन न जाकर के आश्रम की अन्य सेवाओं में लगे रहो।

महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के लीलावसान के पश्चात् योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी ने उनकी आज्ञाओं को शिरोधार्य कर श्री सिद्धगुफा सवाई आकर महाप्रभु जी की तपोभूमि श्री सिद्धगुफा के निर्माण और आश्रम के निर्माण एवं विस्तार के कार्य में जुट गये और यहीं से योग के प्रचार व प्रसार का कार्य समुचित अहर्निश होने लगा। महाप्रभुजी के जन्म-दिन चैत्र शुक्ल पक्ष रामनवमी को योग-मेला लगने लगा। महाप्रभु जी की कृपा से योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के शिष्यों का विस्तार देश-विदेश में होने लगा, जहां महाप्रभु जी के योग की अमरवाणी की ध्वनि गूंज रही है।

यह सन्दर्भ आता है कि महाप्रभु श्री रामलाल जी ने अपने दक्षिण भारत के भ्रमण के समय नासिक में अपना कार्य-निर्माण किया था, वहां गणेशपुरी आश्रम के गुरुदेव भगवान नित्यानन्द जी को दीक्षा दी और उन्हें शक्तिपात कर कृत्य-कृत्य कर दिया। यह यथार्थ है कि सिद्धगुरु अपने योग्य पात्र को हर प्रकार की शक्तियों से भरपूर करने में तनिक संकोच नहीं करते। यही कारण है कि भगवान नित्यानन्द जी ने गुरु में श्रद्धा व सेवा-भाव से ओतप्रोत निष्ठावान स्वामी श्री मुक्तानन्द परमहंस को योगैश्वर्य की सम्पूर्ण सिद्धियों से निहाल कर दिया। स्वामी जी भी अपनी गुरु भक्ति और उच्चकोटि की साधना के बल पर पूर्ण सिद्धावस्था को प्राप्त हुए। स्वामी जी ने अपने गुरु के योग के विज्ञान को आगे बढ़ाया और साधना की दिव्यानुभूतियों को महाबलेश्वर में लिपिबद्ध कराया। वस्तुतः सिद्धों की सिद्धानुभूतियां गोपनीय होती हैं किन्तु स्वामी जी ने योगारूढ़ साधकों के कल्याण एवम् पथ-प्रदर्शन के लिये अधिकांश अनुभूतियों को सार्वजनिक कर दिया, जो उनके द्वारा लिपिबद्ध की गयी जो "चित्शक्ति विलास" नामक ग्रन्थ में संग्रहीत है। इस पुस्तक का व्यापक प्रचार हुआ और अंग्रेजी फ्रेन्च आदि भाषा में इसका अनुवाद हो चुका है। योग की गूढ़ विभूतियों और साधनाकाल में आने वाली कठिनाइयों से परिचय मिलता है। स्वामी मुक्तानन्द परमहंस जी की दिव्यानुभूतियों का निचोड़ यह है कि गुरु की शक्ति की सामर्थ्य एक समान हुए भी शिष्यों में शक्तिपात के विकास के लक्षण भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं। अधिकार-भेद से शक्तिपात के फल में तारतम्य रहता है। गुरु किसी भी रीति से चाहे स्पर्श, शब्द, दृष्टि या संकल्प से दीक्षा देते हैं। ऐसी दीक्षा में एक ही शक्ति का विविध रीति से प्रकटीकरण होता है। शक्तिपात दीक्षा एक ही है, लेकिन उसके परिणामस्वरूप अलग-अलग अनुभव होने से शास्त्र में क्रियावती, कलावती, वर्णमयी, वेधमयी, ज्ञानमयी, इत्यादि प्रकार की दीक्षा कहते हैं। शक्तिपात होते ही क्रियावती दीक्षा में किसी को आसन, प्राणायाम, बन्ध, कुम्भक आदि यौगिक प्रक्रियायें अपने आप होने लगती हैं। कलावती में किसी को ज्योति दर्शन, नाद, दिव्यगन्ध, रस-शब्द-रूप का अनुभव और देवी-देवताओं के दर्शन होते हैं। वर्णमयी में किसी को मन्त्र या काव्य स्फुरता है, वेधमयी में किसी को

सुषुम्ना नाड़ी में चक्रभेद का अनुभव होता है, ज्ञानमयी में किसी को तत्क्षण अन्दर से ज्ञान उदित होता है। कई साधकों को उन सबका मिश्रित अनुभव भी होता है। वस्तुतः इन सबमें दीक्षाभेद नहीं है, अनुभव भेद हैं। जिनको शरीर शुद्धि की आवश्यकता होगी, वह यौगिक क्रियाओं द्वारा शुद्ध होने लगेगा। वासना प्रबल होकर फिर शान्त होगी और अन्त में नष्ट हो जायगी। पुराना या छुपा हुआ रोग प्रकट होकर हमेशा के लिये दूर हो जायेगा।

स्वामी मुक्तानन्द जी ने इस ग्रन्थ के माध्यम से निजी अनुभूतियों को लेकर अन्तर शक्ति के कार्यकलापों को प्रकट किया है। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से होने वाली यौगिक-क्रियायें, भयावने दृश्य, मन की भ्रम-युक्त स्थिति, ज्योतिदर्शन, लोकान्तर और देवीदेवताओं के दर्शन, नाद श्रवण, प्रतीक-दर्शन, मरण भय, कर्ण चक्रभेद, नेत्र बिन्दु-भेद, अमृतपान, ब्रह्मभाव, गुरुभाव आदि की अनुभूतियाँ होती हैं। चार शरीरों (स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण), चार अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्य) की द्योतक, ध्यान में दिखने वाले चार रंग (रक्त, श्वेत, कृष्ण, नील) की ज्योतियाँ और उनके प्रमाण (स्थूल, शरीर, अंगुष्ठ, पर्वार्ध, मसूर) की विराट सिद्धि अनुभूतियों का उल्लेख उन्होंने अपने ग्रन्थ में किया है। अन्त में उन्होंने स्पष्ट किया है कि साधक धीरे-धीरे देहभाव और द्वैतभाव से परे होकर द्रष्टाभाव को प्राप्त होता है और "अहं ब्रह्मास्मि" के स्फुरण युक्त बनता है।

संक्षेप में यही है "वर्तमान योग के अमर विद्या के प्रचार-प्रसार में महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का योगदान।"

सन्त-महात्माओं की सेवा कैसी हो ?

★ महात्माओं की, साधु-सन्यासियों की, गुरुओं की सेवा-पूजा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक करो, परन्तु करो उनके स्वरूप के अनुरूप ही। जो जिस स्थिति में है, उसकी सेवा-पूजा उसी स्थिति के अनुसार करनी पड़ती है। सन्यासी के सिर पर राजमुकुट और राजा की कमर में कौपीन अस्थानीय और अशोभनीय होते हैं। यथायोग्य सेवा-पूजा से ही मर्यादा रहती है और इसीसे दोनों ओर कल्याण है। ऐसी सेवा-पूजा न करो जिससे उनके महत्वपूर्ण स्वरूप का अपमान हो, उनके त्यागमय वेष पर कलंक लगे, उनकी साधन-सम्पत्ति नष्ट होने का डर हो, उच्च स्थिति से गिरने की आशङ्का हो, अथवा उनकी देखा-देखी करने वाले दूसरे लोगों के पतन की सम्भावना हो। —शिव

श्री सद्‌गुरु का आल्हाद ही
महाप्रभु श्री रामलाल जी का यथार्थ स्वरूप

डॉ० श्री विजयसिंह

उस दिन भी एक क्षुद्र जीव के रूपान्तरण का समय-संस्कार उपस्थित हुआ था। प्रश्न अन्तःकरण से उठा "मनुष्य की पूजा लोग क्यों करते हैं ?" सम्मुख स्वयं विराट पुरुष ने सुना और अट्टहास कर उठा। आल्हाद से भरकर क्षुद्र जीव का आलिंगन किया। उसी क्षण क्षुद्र जीव का विराट में रूपान्तरण शुरू हो गया। चलते-फिरते उठते-बैठते उस जीव के दृष्टि-बोध में एक स्वर्णिम-ज्योति आलिप्त रहने लगी। जो अज्ञात् मन की गलियों को निरुद्ध करके नाना तेज (अलौकिक) दिखाती है। उस ज्योति में जो रूप उभरता है वह परम गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी का हुआ करता था।

तेज के केन्द्र बिन्दु में महाप्रभु और अखण्ड विस्तार में भी महाप्रभु। और एक दिन उन विराट पुरुष ने मानव मात्र के कल्याण हेतु आल्हाद में भरकर एक मन्त्र उद्घोष किया—

गुरुदेव जय जय, सद्‌गुरु जय जय।
अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय जय।।

जिसने भी मुग्धभाव से इस महामन्त्र का आश्रय लिया। वह प्रभावटी से विस्तार सहज ही पा गया।

मैं जब भी अपने किसी गुरुभाई-बहन को महाप्रभु श्री रामलाल जी की लोकोत्तर कृपाओं का बोध कर आनन्द मग्न हुआ देखता हूँ तो मेरे मन में उस समय एक ही विचार उठा करता है, अहो ! मेरे सद्‌गुरु ने इस भाग्यवान को अपनी आल्हाद शक्ति का दान किया है, जिसके फलस्वरूप महाप्रभु में व्यक्ति-विशेष भाव-भावित हो रहा है।

कभी श्री गुरुदेव भगवान ने कहा—लल्ला ! महाप्रभु जी कौन हैं ? तुम्हें बताऊँ। वे वो हैं जो राम-कृष्ण को बनाते हैं। कृष्ण कौन है, जिन्होंने अर्जुन को अपनी अनन्त विभूतियों का दर्शन कराते हुए गीता में कहा है—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं
श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम
तेजोंऽशसंभवम्।।
अथवा बहुनैतेन किं
ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन
स्थितो जगत्।।

अर्थात्—हे अर्जुन तुम्हें मैंने विस्तार से तमाम अपनी विभूतियों को बताया परन्तु

इन सबको जानने से तुम्हें क्या प्रयोजन ? तुम बस इतना ही जान लो कि इस सारे जगत् को मैं अपने एकांश में ही धारण किए हुए हूँ।

ऐसे श्रीकृष्ण और उनके भी निर्णायक परम तत्त्व भूमा रूप महा प्रभु जी कौन हैं ? उनकी विभूतियों, योगैश्वर्यों का लेखा-जोखा कौन कर सकता है। नमक का पुतला क्या समुद्र में पैठकर उसकी गहराई नाप सकता है ? श्री सद्गुरु भगवान द्वारा कथित व लिखित श्री महाप्रभु जी के दिव्य चरित्रों में ऐसे दो पात्र अवश्य दीखते हैं जो उन्हें परखना चाहा था। उनके ओर-छोर का नाप अज्ञानतावश करना चाहा था। एक स्वामी मुलखराज जी और दूसरे अगड़धत्ता जी।

स्वामी मुलखराज जी उपाख्यान—

हरिद्वार में कुम्भ पर्व। महाप्रभुजी के साथ अनेक विरक्त-गृहस्थ साधकजन। लाड़ले श्री मुलखराज जी ने पूछा—प्रभो ! इस कुम्भ में अनेक सन्त, सिद्ध आये हैं उनकी अपनी कमाई या पहुँच कितनी है यह कैसे जाना जा सकता है। श्री प्रभुजी ने कहा—लल्ले ! तेरे लिए यह कौन सी कठिन बात है। ध्यान में बैठकर मेले में आये तेजस्वी महापुरुषों को देख तथा जिसकी कमाई जितनी हो उसके आत्म तेज के विस्तार को देख। जहाँ तक उसका तेज व्याप्त होगा वह उतना ही महान् है। स्वामी जी ने देखा कोई महात्मा का तेज हरिद्वार में व्याप्त है। कोई का पूरे देश में व्याप्त है। किसी-किसी का पूरे लोकों में व्याप्त है। ऐसा कइयों का तेज देखते-देखते अचानक उनके मन में विचार आया देखें हमारे प्रभुजी का तेज का विस्तार क्या है ? श्री प्रभुजी के अखण्ड-मण्डल का परम तेज पर जब-जब अपनी पकड़ बनाना चाहा अन्तर्हृदय भी चकाचौंध हो उठता। बार-बार प्रयास में असफल होने पर उन्होंने एक उपाय मन में सोचा और श्री प्रभुजी के तेज की एक किरण का अवलम्बन ले अपने सूक्ष्म शरीर से उसी की धारा में चलते चले गये। भू-मण्डल समाप्त हो गया। सप्त ऊर्ध्व लोक समाप्त हो गये। किरण का अन्त ही नहीं होता दीखा। अब आगे जाने में उन्हें भय होने लगा कि कहीं ऐसा न हो जाए कि गलत मैं लौटकर शरीर में प्रवेश ही न कर पाऊँ। एक अज्ञात भय-सा सूक्ष्म में व्याप्त हो गया। तभी श्री प्रभुजी प्यार भरे रोष से उन्हें सकुशल कर बोले—मेरे से ही कौशल लेकर मेरी परीक्षा करता है। श्री मुलखराज जी सभीत श्रद्धानत चरणों में गिर पड़े।

श्री योगिराज अगड़धत्ता प्रसंग—

श्री सद्गुरु भगवान जिस समय मात्र सोलह-सत्रह वर्ष के वय में वृन्दावन धाम में रह रहे थे, उन्हीं दिनों योगी अवधूत अगड़धत्ता जो अत्यन्त छिपे रूप से रहा करते थे, श्री प्रभुजी से मैत्री भावना रखते थे। जिनके क्रिया कलाप अत्यन्त विचित्र थे, दूसरों को अन्तःप्रेरित कर श्री प्रभुजी के लिए समय-समय पर भोजन की व्यवस्था किया करते। वे स्वयं कुछ भी नहीं खाते थे। किसी के आमन्त्रण पर कहते क्यों ! मुझे खिलाकर तुम्हें मुझे मारना है। एक दिन इस प्रकृतिजयी महात्मा ने श्री प्रभुजी को उस समय बटुक ब्रह्मचारी थे बोले—क्यों जी तुम्हारे गुरुजी को (महाप्रभु श्री रामलाल जी) को यहाँ खींच लें। श्री प्रभुजी भी अपनी अन्तर्यामिता से अगड़धत्ता की वास्तविकता को जान रहे थे बोले—हाँ यदि किसी तरह आप में है तो मेरे गुरुदेव को खींचकर दिखा ही दीजिये। जिस समय यह अपने गुफा से ऋषिकेश

आश्रम पहुँचा। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी (महाप्रभुजी) के अखण्ड तेज को देखकर सम्मुख जाना बहुत उसे कठिन हुआ। उस पर जगन्नियन्ता महाप्रभुजी ने उसे ताड़ना करते हुए—लगाओ इसको पाँच जूते। यह हमें तौलने की इच्छा करता है। यह सुनते ही अवधूत की भान नष्ट हुए और आश्रम में अत्यन्त आह्लादित होकर श्री प्रभुजी से बोले—अरे! आज आप तो मुझे पिटवा ही दिए होते। मैं क्या जानता था कि आपके गुरुदेव सर्व शक्तिमान महाप्रभु जी हैं। तत्पश्चात प्रति वर्ष वे प्रत्यक्ष ऋषिकेश आश्रम आकर अपने दुःसाहस की बार-बार क्षमा-याचना करते थे। श्री महाप्रभुजी उसे देख मुस्करा दिया करते थे। प्रसाद पाते ही अवधूत आश्रम से लौट आया करते थे।

ब्रह्म राक्षसी प्रसंग--

''गहना कर्मणो गतिः'' कभी-कभी धर्म की ओर बढ़ते हुए लोगों को भी अपने पूर्व दुष्कर्मों के कारण भयंकर संस्कार भोग भोगना पड़ जाता है। पन्द्रह-बीस वर्ष पूर्व योगी नरसिंह मूर्ती जी (श्री प्रभुजी के दक्षिण भारतीय गुरुभाई) कन्नड भाषा की एक लघु कथानक का अनुवाद करके श्री गुरुदेव भगवान को सुनाते थे। जिस कथा के सारांश से हम सभी को श्री महाप्रभु जी के स्वरूप (फोटो) जो हमारे घरों में विद्यमान किया हुआ है का महत्त्व समझ में आयेगा।

एक ब्रह्म राक्षसी जब श्री महाप्रभुजी के स्वरूप पर चढ़े पुष्प को खाकर मुक्त हुई। उस समय श्राप मोचित उस दिव्यात्मा ने एकत्रित लोगों की जिज्ञासा को शान्त करने हेतु कहा—देखो! सामान्य साधुओं के वेश में जो श्री महाप्रभु रामलाल जी का स्वरूप है उनके दिव्य तेज से आज हम श्राप-मुक्त होकर अपने पूर्व आध्यात्मिक स्थान में प्रतिष्ठित हो गई हूँ। ये ही इस सृष्टि के सर्व कर्त्ता-धर्ता हैं इनका ही आदि प्राकट्य हिरण्यगर्भ में साकार ब्रह्म था है। इनके ही अधीन ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा आदि देवता अपने-अपने कार्यों का सम्पादन करते हैं। कलियुग में भी महा प्रभाव से किसी जीव को प्रतिष्ठित करा देना इस परम दिव्य-पुरुष का तो खेल ही है। ऐसा उपदेश देकर वह आकाश गमन करके हिमालय में जाने को उद्यत हुई थी।

दक्षिण भारत के जगद्गुरु शंकराचार्य (कांची पीठ) के जो स्वयं परम सन्त थे श्री महाप्रभुजी के छायाचित्र को देखकर बोल उठे थे कि ''नारायण स्वयं''। अहा! यह महापुरुष की बात कौन जान सकता है? इन स्वरूप (छायाचित्र) की बात बता सकता हूँ। हजारों-हजार लोगों को मोक्ष प्रदान इस स्वरूप से ही हो सकता है। इसीलिए श्री सद्गुरु भगवान सदैव हम दीन-हीन अपात्रों को चेतावनी देते रहा करते थे कि नियम पूर्वक सुबह-शाम श्री प्रभुजी की आरती पूजन करते रहना। इससे तुम्हारा लोक-परलोक भी तरण-तारण श्री प्रभुजी सम्भार देंगे।

बहुत पहले की एक घटना याद आ रही है, श्री प्रभुजी (सद्गुरु भगवान जी) किसी अन्तरंग ब्रह्मचारी से कह रहे थे कि—देखो! महाप्रभुजी के जो लौकिक दिनचर्या थे उनमें से किसी एक बात का भी तुम अपने जीवन में पूर्णतया पालन करलो तो वे कृपासिंधु तुम्हें सब कुछ एक पल में प्रदान कर देंगे। फिर करुणानिधान श्री गुरुजी बोले—श्री महाप्रभुजी! लौकिक जीवन में तीन बार बाँये हाथ शुद्ध मृत्तिका से मार्जन करते थे, फिर दोनों हाथ बारह-बार मृत्तिका से मार्जन करते थे। देखो, मैं तो लकीर का फकीर हूँ। मैं भी वैसा ही करने की चेष्टा करता हूँ;

तुम भी ऐसा कर लिया करो। अनेक आप-दाओं, व्याधियों से बच जाओगे।

केशवानन्द अवधूत प्रसंग—

ऋषिकेश गीताभवन में उन दिनों अव-स्थित श्रीकृष्ण भक्त अवधूत केशवानन्द ने श्री गुरुदेव भगवान से जो (उस समय किशोर वय के थे) बोले—तुम धन्य हो, ऐसे महान् योगिराज तो हिमालय को कभी छोड़ते ही नहीं, हमें तो बहुत बड़ा आश्चर्य है, यह यहाँ ऋषिकेश में कैसे हैं ?

श्री गुरुनानक देव जी—

ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी ने योग-दर्शन के इस सूत्र "बलेषु हस्तिबलादीनि" अर्थात् बलों में संयम करने से योगी को हाथियों का बल एकदम प्राप्त हो जाता है। ऐसा बल श्री नानकदेव जी को प्राप्त था। यह जानकर ब्रह्मचारी जी ने ध्यान में श्री नानकदेव जी का दर्शन किया और निवेदन किए कि ऐसा प्रबल साधन चाहता हूँ कि जिससे मेरे शरीर में अतिशय बल बढ़ जाये। श्री नानकदेव जी ने कहा—जिसकी कृपा से तुम मेरे पास आ सके हो, वे साधन तुम उन श्री प्रभुजी से सीखो, जो सब प्रकार से परिपूर्ण परात्पर शुद्ध ब्रह्म हैं और सृष्टि के आदि से अन्त तक रहने वाले पूर्ण सिद्ध हैं।

श्री सद्गुरु भगवान के प्रेरक संकेत—

प्रयागराज में संगम स्नान से लौटते हुए आनन्दकन्द श्री सद्गुरु भगवान किसी प्रसंगवश बोले—लल्ला ! श्री प्रभुजी ने लाहिड़ी (योगिराज लाहिड़ी महाशय) को चार वर्ष की उम्र में जब शक्तिपात किया था मुझे उस घटना का शुभ स्मरण है। अचानक बात को मोड़ते हुए बोले—देखो ! यह सब बातें मैं यदि कहूँ तो दुनियाँ समझेगी कि अपने गुरुदेव को बड़े-बड़े लोगों से जोड़ कर प्रचार कर रहे हैं। श्री महाप्रभु जी कौन हैं ? इसका बोध कितनों को है ? फिर कई वर्ष पश्चात् श्री प्रभुजी ने एकान्त में लाहड़ी महाशय की स्वर्ण महल में हुई दीक्षा (रानी खेत अल्मोड़ा की घटना) की बात ऐसे ब्यौरे-वार बोल रहे थे, जो उनके सामने घटित हुई हो। आगे चलकर श्री प्रभुजी ने एक पत्र द्वारा आदेश दिया कि लल्ला ! "Autobiography of Yoganand" प्राप्त करके उसका हिन्दी अनुवाद सिद्धयोग में प्रकाशित करो। लाहड़ी महाशय के श्री गुरुदेव श्री बाबा जी ही महाप्रभु जी हैं। शोधपूर्वक लेख लिखना। श्री योगानन्द जी जिन्हें दो-एक बार श्री महाप्रभुजी (बाबाजी) के दर्शन हुए थे, उन्होंने अपने सद्गुरु श्री युक्तेश्वर जी द्वारा वर्णित बात लिखते हैं—"बाबाजी की आध्यात्मिक अवस्था मानस-कल्पनातीत है, उनके योगैश्वर्य की स्पष्ट कल्पना योगियों के लिए भी संभव नहीं है। वह अबोधगम्य है।

दूसरी जगह लिखते हैं, महाप्रभुजी का उद्देश्य रहा है, महापुरुषों के जन्म लेने के विशेष प्रयोजन की पूर्ति में उनकी सहायता करना। अतः वे महावतार हैं। उन्होंने स्वयं बताया है कि संन्यास आश्रम के पुनः संगठक अद्वितीय तत्त्वज्ञानी जगद्गुरु शंकराचार्य (गोविन्द यति के शिष्य आदि शंकराचार्य) को काशी में योग दीक्षा प्रदान किये थे। मध्ययुगीन कबीर को उन्होंने ही योगदीक्षा दी थी। उनकी एकमेव विशेषता है अदृश्य स्रष्टा ईश्वर के समान आत्मगोपनीय भाव से कार्य करते रहना। राम-कृष्ण, ईसा जैसे अवतार किसी विशेष उद्देश्य को लेकर आविर्भूत होते हैं और उस उद्देश्य के सिद्ध होते ही तिरोहित हो जाते हैं। परन्तु महा-

प्रभु जी (श्री बाबाजी) शताब्दियों-शताब्दियों तक मानव जाति को विकास के पथ पर अग्रसर कराने का कार्य अपनी देख-रेख में करते हैं।

श्री सद्गुरु भगवान के प्रवचन के वे कथन मन में स्फुरित हो रहे हैं—जिस समय श्री सद्गुरु भगवान को पूर्व ही ज्ञात हो गया कि अब श्री प्रभुजी इस शरीर को कुछ ही दिन में छोड़ने वाले हैं, वे विह्वल होकर अब यह बात अधीरता से महाप्रभु जी के सम्मुख प्रकट किये तब श्री महाप्रभुजी ने ताड़नात्मक ढंग से कहा—"मैं तो नित्य ही ऐसे सैकड़ों शरीर धारण करता और छोड़ता हूँ, तुम किस-किस के लिए व्याकुल और आतुर होगे।" ऋषिकेश आश्रम में एकबार श्री सद्गुरु भगवान ने कहा—"मैंने सोलह सौ वर्षों में श्री महाप्रभु जी ने जहाँ-जहाँ अवतार लेकर कार्य किये हैं उन स्थानों का शोधपूर्वक खोज किया है।" इन बातों से योगानन्द जी के कथन की पुष्टि स्वमेव हो जाती है।

लाहड़ी महाशय कहा करते थे—"जब कोई भी श्रद्धा के साथ बाबाजी के नाम का उच्चारण करता है, तब उस पर तत्क्षण आध्यात्मिक आशीर्वाद की वर्षा होती है।" आप सुधी पाठकों को स्मरण होगा कि जब भी हम सभी अपने कष्टों के निवारण हेतु श्री सद्गुरु भगवान को पत्र लिखते उनके करुणा-युक्त पत्रोत्तर में महामन्त्र वाक्य हुआ करता था—चि० तुम अनन्यभाव से उन आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के चरण-कमलों का चिन्तन करते हुए अपने गुरु-मन्त्र का जाप करो। वो करुणाकरण श्री प्रभुजी सदैव अपने बालकों के साथ रहा करते हैं। गुरु आयेंगे और चले जायेंगे—किन्तु अमर गुरु महाप्रभुजी सदैव सदैव उपस्थित रहेंगे।

गोरखपुर में सद्गुरु प्रवचन प्रसंग—योग और योगियोंके प्रकार की विवेचना करते हुए प्रकृतिजयी (भूतजय प्राप्त) अमर सिद्धों के बारे में बोलते हुए श्री गुरुदेव भगवान जी गोरखपुर में अचानक कई बार बोले—देखो! मैं प्रवचन कर रहा हूँ यहाँ परन्तु गोरक्षनाथ एवं भगवान मत्स्येन्द्रनाथ सुन रहे हैं। ऐसा गोरक्षनाथ मन्दिर के विशाल सभाकक्ष में सैद्धान्तिक प्रवचन के दौरान श्री प्रभुजी कई बार बोल उठे थे। भगवान मत्स्येन्द्रनाथ तथा गोरक्षनाथ के लिए सामान्य सम्बोधन। मन में, उस समय बात खटकती रही। निवारण हुआ उस घटना के स्मरण से जब कुम्भ मेले में स्नान से लौटते हुए श्री प्रभुजी अचानक सड़क के किनारे गोरखनाथ मन्दिर के लगे कैम्प के दरवाजे की ओर मुड़ गये और दरवाजे पर लगे योगियों के बड़े-बड़े कट-आउट (पोस्टर चित्र) बड़े ध्यान से देखते व थोड़ी देर पढ़ते रहे। अचानक ही लौट पड़े। हम सभी आश्चर्यचकित थे श्री प्रभुजी के उस दिन के लौकिक व्यवहार पर। श्री प्रभुजी से किसी भाई ने पूछा—महाराज जी! इस सम्प्रदाय में तो सभी योगी ही हुए हैं। श्री प्रभुजी रुककर अपनी छड़ी बालुका में गाड़ कर उसी पर विश्राम मुद्रा में टेक लगाकर हम सभी बच्चों को निहारते हुए बोले—देखो! भगवान मत्स्येन्द्रनाथ गोरखनाथ के गुरुदेव हैं। उनका जो चित्र इन सम्प्रदाय वालों ने लगा रक्खा है, स्थूलकाय वे ऐसे नहीं हैं इन बेचारों को नहीं पता। भगवान मत्स्येन्द्रनाथ का कटि अति क्षीण और श्री प्रभुजी ने अपने हाथ को फैलाकर बताए देखो छाती शेरों के भाँति यों चौड़ा है। पेट और पीठ तो अन्दर घुसे हुए हैं एक जैसा

हो रहे हैं। फिर उस भाई ने पूछा—श्री प्रभु जी ! वे आज भी हैं ? श्री प्रभुजी ने कहा—वे अमर सिद्ध हैं। लल्ला ! तुम्हें क्या बताऊँ तुम सोचोगे कि श्री महाप्रभु जी को बड़े-बड़े योगियों से जोड़कर उनका मान बढ़ाता हूँ। श्री महाप्रभु ही मत्स्येन्द्रनाथ हैं।

अनेक अमरसिद्ध उनकी कृपा कटाक्ष से बन जाते हैं। उस समय मेरे चित्त में योगिराज हरिहरानन्द जी का स्मरण हो जाता कि कैसे इसी कलिकाल में श्री महाप्रभुजी ने अमर योग साधना सिखाकर उन्हें श्रीनागिर के पर्वत पर बैठा दिया है।

अस्तु परमगुरु के चिन्मय स्वरूप का यथार्थ बोध तो उन्हीं को हो पाता जिन्हें सद्गुरु ने अपने अल्हाद से भर दिया। जो भावना, जो धारणा, जो भक्ति आज हम सबके हृदय में श्री महाप्रभु रामलाल जी के प्रति है वह मात्र सद्गुरु भगवान के भावों के, शब्दों के, अल्हाद शक्ति के स्फुलिंग ही हैं। भाग्यवान वो साधकगण हैं जिन्होंने साधना से, अनन्यभाव भावित होकर अथवा अनन्यभाव चिन्तन से उस चिनगारी को महाअग्नि में रूपान्तर करते हुए स्वयं उस अखण्ड ज्योति में समाहित होते जा रहे हैं। "यस्य प्रसादात् पतितो सुपावना" जिन परमगुरु के कृपा-कटाक्ष से अधमाधम भी देव पूजित हो उठता है। उनकी महिमा कदाचित नारद, व्यास जैसे उन्हीं के स्वरूप ही आद्य भाव से जानते समझते हुए भी पार नहीं पाते हैं। फिर कलि-मोह का सामर्थ्य ही क्या ?

वे कृपालु स्वयं हम सभी का हाथ पकड़े हैं। उनकी लाज भी उन्हीं को सम्हालना है।

योग की धारा को अनादि काल से जीवोद्धार के लिए बना रहे श्री परम सद्गुरु तत्त्व को बार-बार कोटिशः नमन करते हुए पुनः जो उन्होंने स्वयं अपने स्वहस्त लिखित चरित्र की भूमिका में उद्बोधित किए हैं उसी से लेख को विश्राम देता है—

योगात्सम्प्राप्यते ज्ञानं
योगो धर्मस्य लक्षणम्
योगः परम तपो ज्ञेयः
तस्माद्योगं समभ्यसेत ॥२७॥

योग से ज्ञान, योग ही धर्म, योग ही तप है अतः प्रयत्न से योग का ही अभ्यास करो।

★ बुद्धिमान मनुष्यो ! यदि दुःख से हटना चाहते हो तो सुख से विरक्त बनो, सुख से विरक्त होना चाहते हो तो विवेकी बनो, विवेकी होना चाहते हो तो मोह का त्याग करो, मोह का त्याग चाहते हो तो तृष्णा छोड़ो, तृष्णा को छोड़ना चाहते हो तो लोभ रहित बनो, लोभ रहित होना चाहते हो, तो सुखद वस्तुओं का संग्रह न करो, संग्रह रहित होना चाहते हो, तो पूर्ण तृप्त, विरक्त ज्ञानी, सत्पुरुष के प्रेमी श्रद्धालु बनो, श्रद्धास्पद देव की कृपा चाहते हो, तो उनकी आज्ञा-पालन करते हुए अपने मन में कहीं उदासी न आने दो, क्योंकि तुम्हारे मुख की उदासीनता से दूसरों को खिन्नता होगी। मन की मलिनता, दुःख, उदासी से केवल तुम्हारी असफलता, दुर्बलता ही प्रगट होती है और सद्गुरु का चिन्तन न होकर अपना ही चिन्तन अधिक होता है।

—साधुवेश में एक पथिक

बिन्दु रक्षण और मृत्युंजय

❀ आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा (नई दिल्ली)

जगत् की रचना सोम और सूर्य के संयोग से हुई है। वैदिक सिद्धान्त है कि 'सोमसूर्यात्मकं जगत्।' जिस तरह ब्रह्माण्ड है उसी प्रकार 'यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे' के नियमानुसार इस मानव शरीर की रचना भी सूर्य या अग्नि तथा सोम या बिन्दु से हुई है। जब तक शरीर में अग्नि तत्त्व तथा जलीय रस तत्त्व सोम रहता है तब तक जीवन विद्यमान रहता है। सूर्य या अग्नि को शक्ति कहा जाता है और सोम को बिन्दु या शिव कहा जाता है। शिव और शक्ति के मिलन को योग या 'परासंवित्' सामरस्य की आनन्द अवस्था माना जाता है। काश्मीर के प्रत्यभिज्ञा दर्शन की तथा तन्त्रों की ऐसी ही मान्यता है। अग्नि में सोम की आहुति पड़ती रहती है और जब सोम निःशेष हो जाता है तभी जीवन लीला भी समाप्त हो जाती है। इसीलिए योग मार्ग ने सोम रक्षा या बिन्दु रक्षा की साधना को श्रेष्ठ मानकर गुप्त रखा गया है। खेचरी मुद्रा, योनिमुद्रा, वज्रोली, शाम्भवी, वैष्णवी आदि बिन्दु जयोपाय की साधनायें हैं जो उत्तम साधक को श्री गुरुदेव अपनी कृपा से सिद्ध कराते हैं। इन साधनों द्वारा बिन्दु स्थिर हो जाता है। उसके साथ-साथ चित्त और मन भी स्थिर हो जाता है। उनकी स्थिरता से कुम्भक वृत्ति द्वारा जीवन स्थिर हो जाता है। जरा, मृत्यु, भय-व्याधि, निद्रा-तन्द्रा, क्षुधा-पिपासा आदि विघ्नों से योगी परे हो जाता है। प्रारब्ध के भोग को भोगने की भी उसकी लाचारी नहीं रह जाती। योग दर्शन के शास्त्रों में स्थान-स्थान पर ऐसा कहा गया है—

'सिद्धे बिन्दौ महायत्ने
किं न सिद्ध्यति भूतले।'

अर्थात् बिन्दु के अत्यन्त यत्न पूर्वक सिद्ध कर लेने पर संसार में कौन-सी ऐसी चीज है जो सिद्ध न हो सके। भगवान शंकर की महिमा इसी बिन्दु सिद्धि के कारण है। इस बिन्दु के क्षरण से मृत्यु का वरण होता है और बिन्दु के रक्षण से जीवन रक्षित रहता है। 'मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात्।' ब्रह्मचर्य रक्षा भी बिन्दु रक्षा या बिन्दु साधना का प्रथम चरण है। क्योंकि रज और वीर्य स्थूल शरीर के ओज-तेज को संवर्धित करते हैं। उनके क्षीण होने से शरीर निस्तेज, ओजहीन और उत्साह रहित हो जाता है। वस्तुतः रज और वीर्य की ही सूक्ष्म परिणति बिन्दु और सोम में होती है।

जब तक शरीर में बिन्दु स्थित है तब तक मृत्यु का डर कैसा? नभोमुद्रा और खेचरी मुद्रा से बिन्दु स्थिर रहता है। यदि योनिमण्डल में कदाचित् बिन्दु का क्षरण हो भी जाय तो योनिमुद्रा द्वारा वज्रोली की शक्ति से पुनः ऊर्ध्व हो जाता है। ऊर्ध्वरेतस-प्राणायाम के द्वारा इसी प्रकार बिन्दु धारणा की जाती है। ध्यान बिन्दूपनिषद् में कहा गया है—

'यावद्बिन्दुः स्थितो देहे
तावन्मृत्युभयं कुतः
यावद् बद्धा नभो मुद्रा
तावद्बिन्दुर्न गच्छति ।
गलितोऽपि यदा बिन्दुः
संप्राप्तो योनिमण्डले ।
व्रजत्यूर्ध्वं हठाच्छक्त्या
निबद्धो योनिमुद्रया ।'

बिन्दु का स्वरूप–

योगशास्त्र में चार प्रकार के शरीरों का उल्लेख है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महा-कारण या तुर्य। शुक्र से स्थूल शरीर की रचना होती है। जैसे दूध के मथने से घी निकलता है वैसे ही कुण्डली जागरण और योनिमुद्रा द्वारा तथा त्रिबन्ध के (मूलबन्ध, उड्डियान बन्ध और जालन्धर बन्ध) सतत् अभ्यास से शुक्लात्मक स्थूल शरीर से पञ्चा-भिन्नात्म सूक्ष्म शरीर बनता है। सूक्ष्म शरीर बिन्दु रूप है। जैसे बरगद का विशाल वृक्ष एक नन्हे से बीज में समाहित होता है उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर प्राणमय कोष का आधार होता है। उसी से स्थूल और कारण शरीर की उत्पत्ति सम्भव है। बिन्दु दो प्रकार का होता है—पाण्डुवर्ण का और लोहित (लाल) वर्ण का। पाण्डुवर्ण को शुक्ल या सफेद कहते हैं और लोहित को रज कहते हैं। सिन्दूरवर्ण रज का स्थान सूर्य नाड़ी में है और श्वेतवर्ण शुक्ल का स्थान चन्द्र नाड़ी में है। बिन्दु चन्द्रमा है और रज सूर्य है। बिन्दु ब्रह्मा है क्योंकि सृष्टि का कर्ता है तथा रज शक्ति है। चन्द्र सूर्य या शुक्ल और रज के संयोग से योगसिद्धि अथवा बिन्दु सिद्धि सम्भव है।

अमरोली और वज्रोली से बिन्दु का क्षरण नहीं होता। सूर्य और चन्द्र का स्थान भौंहों के ऊपर दाँये-बाँये भाग में माना गया है। खेचरी और शाम्भवी मुद्रा तथा योनि मुद्रा के अभ्यास से रजबिन्दु या सूर्यचन्द्र का संयोग हो जाता है। प्राणवायु के द्वारा उज्जयी प्राणायाम द्वारा रज और बिन्दु एक होकर अमृतत्व की सृष्टि करते हैं जिससे मन आनन्दमय बनकर कमल के पुष्प का रसपान करने से तृप्त हुए भ्रमर की तरह निश्चल हो जाता है। इसे उन्मनी अवस्था कहा जाता है। एक दूसरा भी मत है मूलाधार से दो अंगुल ऊपर योनि स्थान में रज स्थित है और सह-स्रार में चन्द्रमण्डल में बिन्दु स्थित है। सभी चक्रों को भेदकर कुण्डली प्रबोध करके सह-स्रार (भृकुटि के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में) मण्डल में चन्द्र से सूर्य का संयोग रूप योग होता है। उन दोनों के संयोग का फल दिव्य शरीर की प्राप्ति है। गुरु गोरखनाथ ने इनका संयोग करने में सिद्ध को ही योगी और गुरु माना है।

योनिमुख बिन्दु अग्निमुख पारा।
जो राखै सो गुरू हमारा॥

दोनों की एकता से जीवन्मुक्त बनता है। बिन्दु को शिवतत्त्व माना जाता है और रज को शक्ति तत्त्व।

योग कुण्डलनी उपनिषद् में मन को ही बिन्दु माना गया है। वही उत्पत्ति स्थिति का कारण है। जैसे दूध से घी पैदा होता है उसी प्रकार मन के मन्थन से ही बिन्दु की उत्पत्ति होती है। ध्यान ही मन्थन कहलाता है।

'ध्यान निर्मथनाभ्यासदेवं
पश्येत् निगूढवत् ।'

दूध में घी वैसे दिखाई नहीं देता किन्तु मथने से जो छिपा था वह प्रकट हो जाता है।

मन से मन को द्रष्टाभाव से ध्यान द्वारा देखने पर शिवरूप बिन्दु प्रगट हो जाता है। कहा गया है कि—

'मन एव हि बिन्दुश्च
उत्पत्ति स्थिति कारणम्
मनसोत्पद्यते बिन्दुर्यथा
क्षीरं घृतात्मकम् ।'

(योग कुण्डली उपनिषद् ३/५)

बिन्दुजय की साधना—

शाम्भवी मुद्रा में पूर्णिमा दृष्टि अर्थात् भ्रू-मध्य में एक टक ऊर्ध्वमुखी दृष्टि करके निराकांक्ष होकर शिवतत्व को अपनी धारणा का विषय बनावे। प्राणों को सुषुम्ना में ले जाकर मन को ब्रह्माकार सोऽहं भावना से संयुक्त कर बिन्दु रूप ईश्वर पर मन को स्थिर कर दे। इससे ब्रह्म, विष्णु और रुद्र ग्रन्थियों का भेदन होगा। शून्य मण्डल में (चिदाकाश में) मन के साथ वायुप्राण को स्थित कर केवली कुम्भक में स्थिर हो जाय। इस प्रकार मूलाधार से आज्ञा चक्र तक के सभी चक्रों का पूर्णज्ञान और अनुभव प्राप्त होगा। खेचरी मुद्रा और नभोमुद्रा के सतत् अभ्यास से बिन्दुजय प्राप्त योगी प्राणवायु, चक्रों तथा चित्त पर भी विजय प्राप्त कर लेगा और ब्रह्माण्ड के साथ पिण्ड की एकता का अनुभव करने लगेगा। बिन्दु और नाद तथा कला इन तीनों का परस्पर सम्बन्ध माना गया है। सुषुम्ना में कुण्डली शक्ति के जागरण से नाना प्रकार के नाद प्रकट होते हैं। नाद से बिन्दु और कलायें प्रकट होती हैं। मूलाधार त्रिकोण में प्राणरूप शिव का आवरणयुक्त जीव नामक स्वरूप स्थित है। यहीं कुण्डलिनी पराशक्ति भी है। कुण्डलिनी के द्वारा ही वायु, अग्नि, बिन्दु, नाद, मन और हंस की उत्पत्ति है। दोनों भौंहों के बीच में ज्योतिर्लिङ्ग है जो मन को प्रकाशित करता है। इसलिए वेद में आदेश है कि दोनों भौंहों के मध्य योगी को ज्योतिर्लिङ्ग का सदा ध्यान करना चाहिए। उससे वह अमरत्व को प्राप्त कर लेगा।

'ज्योतिर्लिङ्गं भ्रुवोर्मध्ये
नित्यं ध्यायेत् सदा यतिः ।'

ध्यान में भावना ही मुख्य आधार है। मन से मनुष्य जैसी-जैसी भावना करता है, वह वैसा ही बन जाता है, यहाँ तक कि अन्त समय जैसी भावना करता है मरणोपरान्त उसे वैसी ही योनि प्राप्त होती है। इसलिए उच्च स्थिति प्राप्त करने की इच्छा करने वाले योग साधक को चाहिए कि तालुमूल में स्थित चन्द्रमण्डल के अमृत को जिह्वा के अग्र भाग से तालुमूल विवर में उसे लगाकर पान करते हुए भ्रूमध्य में शुद्ध स्फटिक सदृश बिन्दु का ध्यान करे यही ब्रह्म का रूप है। जैसा कि गुरु गीता में कहा है—'रूपम् बिन्दुरिति ज्ञेयम्' बिन्दु का ध्यान ही रूपात्मक ध्यान कहा जाता है। मूलाधार में परावाणी बीज के अंकुर की तरह बिन्दु रूप होती है। उसीसे नाद प्रकट होता है, ऐसा योग शिखोपनिषद् में निरूपण है। यही बिन्दु अंकुर के पल्लवों की तरह परावाणी से पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी के रूप में व्यक्त होता है। बिन्दु में मनोलय करने पर दूरदर्शन की योग्यता विकसित हो जाती है। नाद में मनोलय होने पर दूरश्रवण की सिद्धि होती है। मन को जहाँ-जहाँ लगाया जाता है वह वैसा ही बन जाता है क्योंकि भाव ही इस सबका कारण है। अतः भ्रूमध्य की साधना का बहुत महत्व है।

(शेष पृष्ठ ४८ पर)

सिद्धयोग प्रकाशन आय-व्यय विवरण सन् १९९५-९६ (२८वाँ वर्ष)

आय

ग्राहक शुल्क— वार्षिक एवं द्विवार्षिक (वर्ष उन्तीसवें के रु० १,७८०-०० सहित)	रु०	३१,४२५-००
आजीवन ग्राहक शुल्क	रु०	९,६६६-००
सदस्य सहयोग राशि (गुरु भाई-बहिनों व मण्डलों से प्राप्त)	रु०	३०,८१९-००
योग	रु०	७१,९१०-००
वर्ष १९९४ का शेष धन प्रेस में जमा था	रु०	२,०९१-००
बैंक ब्याज से प्राप्त	रु०	२४०-४९
कुल योग	रु०	७४,२४१-४९

व्यय

प्रेस से सिद्धयोग प्रकाशन अप्रैल १९९५ से मार्च १९९६ तक बिल प्राप्त राशि योग रु० ४९४४०-५० / बिलों की भुगतान राशि अप्रैल १९९५ से मार्च १९९६ तक बैंक व ड्राफ्टों द्वारा	रु०	४९,४२६-००
शेष देय रु० १४-५०		
सिद्धयोग कार्यालय सम्बन्धी विविध खर्च स्टैपल मशीन, डाक टिकटें पत्रिका भेजने हेतु, पोस्टकार्ड आदि फुटकर खर्च जून १९९५ से मार्च १९९६ तक स्टेशनरी सहित	रु०	१,६५४-००
बैंक ड्राफ्ट बनवाने में खर्च	रु०	१०५-००
स्व० श्री राजनारायन शर्मा द्वारा दिखाया गया खर्च स्टेशनरी, ड्राफ्ट बनवाई एवं पत्रिका ऋषिकेश भेजने में	रु०	४१७-००
स्व० श्री राजनारायन शर्मा द्वारा पिछले वर्ष घाटा पूर्ति का भुगतान किया गया	रु०	८,०००-००
अप्रैल १९९६ के विशेषांक हेतु प्रेस को एडवांस ड्राफ्टों द्वारा मय ड्राफ्ट खर्च सहित	रु०	७,०३०-००
योग	रु०	६६,६३२-००
बैंक में जमा	रु०	७,१४८-४९
योग	रु०	७३,७८०-४९
नकद	रु०	४६१-००
कुल योग	रु०	७४,२४१-४९

नोट—प्रकाशन आदि में आये घाटे की पूर्ति विभिन्न मण्डलों—जीन्द, कानपुर, बलिया, मण्डी, कांगड़ा, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के भाई-बहिनों के सहयोग से एवम् आजीवन सदस्यों के सहयोग से की गई है। —व्यवस्थापक : 'सिद्धयोग' प्रकाशन

श्री गुरुदेव की कृपायें—"पुत्ररत्न की प्राप्ति"

❀ श्री केशवदेव उपाध्याय (वाराणसी)

योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा सवाई आश्रम से सम्बन्ध रखने वाले हमारे गुरुभाई-बहन आदरणीय गुरुभाई एवं आराध्यदेव के विशेष कृपापात्र शिष्य भाई श्री ब्रजमोहन जी वाशिष्ट के नामसे अवश्य परिचित होंगे। भाई श्री ब्रजमोहन जी नानौता कस्बे के निवासी हैं एवं श्री प्रभु की अहेतुकी कृपा से अब भी पूर्ण रूपेण निरोग, स्वस्थ एवं प्रसन्न हैं। भाई जी को यह सौभाग्य प्राप्त होता रहा कि आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के चरण-कमल अनेकों बार इनके निवास स्थान को पवित्र किया है। चाहे यह सौभाग्य श्री प्रभुजी के यौगिक प्रचार कार्यक्रमों द्वारा प्राप्त हुआ हो या आते-जाते श्री गुरुदेव भगवान ने कुछ घण्टों इनके निवास स्थान पर विश्राम करके यह अवसर प्रदान किया हो। श्री ब्रजमोहन जी का मकान, नानौता थाने के बिल्कुल करीब ही है। मकान के एक हिस्से में आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज एवं योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज का स्वरूप विराजमान है, जिसका आरती-पूजन प्रातः एवं सायंकाल दोनों समय नियमित होता है। इसी स्थान विशेष में श्री सद्गुरुदेव जी महाराज अपने पार्षदगणों के साथ निवास किया करते थे। इस मन्दिर की पवित्रता बनाये रखने के लिए, आराध्यदेव की लीलावसान के पश्चात्, श्री ब्रजमोहन जी ने एक नियम बनाया है कि इस मन्दिर में श्री प्रभु चर्चा एवं आध्यात्मिक प्रसंग के सिवाय दूसरी कोई वार्ता न की जाये। वे इस नियम का बड़ी कड़ाई से पालन करते एवं कराते हैं।

कथानक जिसका वर्णन किया जा रहा है, सन् उन्नीस सौ नवासी-नब्बे का है। मथुरा निवासी श्री गौतम जी (पूरा नाम स्मरण नहीं है) जो पुलिस विभाग में दीवान के पद पर कार्यरत थे, नानौता थाने पर कहीं से स्थानान्तरित होकर अपनी योगदान की सूचना के साथ पोस्ट किये गये। थाने पर दीवान का कार्यभार ग्रहण करने के पश्चात् श्री गौतम जी ने अपना निवास स्थान बनाने के लिए कमरों एवं मकान की खोज आरम्भ की। उनके सहयोगी मित्रों एवं विभागीय कर्मचारियों ने भी इस कार्य में उनकी भरपूर सहायता की परन्तु कोई भी मकान या कमरा इन्हें पसन्द नहीं आया। इसी बीच इनके किसी हितैषी ने इनको बतलाया कि पण्डित जी (भाई ब्रजमोहन जी) के मकान का वह हिस्सा खाली है जिसमें गुरु जी निवास किया करते थे, एवं वह बहुत अच्छी प्रकार की स्थिति में भी है। आखिर पता लगाकर श्री गौतम ने उस स्थानको दर्शन करने के बहाने देख भी लिया एवं उसके पश्चात् उसे किराये पर लेने की नीयत बनाकर श्री ब्रजमोहन जी से मिले। उन्होंने निवेदन किया कि पंडित जी, मैं काफी दिनों से निवास स्थान के लिए मकान की खोज में था परन्तु मुझे कोई भी मकान पसन्द नहीं

जायगा। आपके मकान का वह भाग जिसमें आपके गुरुदेव यहाँ आने पर निवास किया करते थे, हमें बेहद पसन्द है। आप कृपा करके हमें किराये पर देने की कृपा करें। श्री गौतम जी का यह निवेदन सुनकर भाई ब्रजमोहनजी ने कहा कि आप किन कमरों की बात कर रहे हैं। उन्होंने बताया कि वे कमरे जिसमें आप पूजा करते हैं एवं पूजन वाले सामान तथा सामान रखे हुए हैं। श्री ब्रजमोहन जी ने कहा, अरे भाई वह कमरा हमारे श्री गुरुदेव भगवान का है। न तो हम उसे किसी को किराये पर देते हैं और न उस कमरे में दुनियाँ की कोई बात या कार्य करते हैं, गुरुदेव का कमरा केवल पूजा, आराधना एवं स्वाध्याय के कार्य के लिए ही प्रयोग किया जा सकता है।

उनके स्पष्ट मना करने के बाद भी श्री गौतम जी उस कमरे को लेने का अनुरोध करते रहे। एक दिन उन्होंने भाई श्री ब्रजमोहन जी से यह बात कही कि हमारी माताजी वृद्ध आध्यात्मिक महिला हैं एवं यदि आप वे कमरे हमें दे देवें तो उन्हें काफी प्रसन्नता होगी एवं यहाँ से गंगाजी नजदीक होने से स्नान का लाभ भी उन्हें मिल जायेगा। योगी साधक का हृदय बड़ा ही सरल एवं दयालु होता है, बारम्बार अनुरोध के परिणामस्वरूप आखिर भाई जी वह कमरा देने पर राजी हो गये। जब किराये की बात आरम्भ हुई तो श्री ब्रजमोहन जी ने कहा कि भाई किराया चाहे तुम मत देना परन्तु हमारी कुछ शर्तों का पालन अवश्य करना। उन्होंने बतलाया कि इन कमरों में न तो कोई अखाद्य वस्तुएँ (मांस, मछली और मदिरा इत्यादि) बनायी जायेंगी एवं न इनका सेवन कोई करेगा। व्यभिचार एवं अत्याचार न तो न कमरों में होगा और न उसकी बात होगी। श्री गौतम जी ने भाई ब्रजमोहन जी की सभी शर्तें स्वीकार कर ली एवं उसमें निवास करना आरम्भ कर दिया। भाई ब्रजमोहन जी विनोदी प्रकृति के हैं अतः उन्होंने उपरोक्त बातों के सम्बन्ध में कहा कि दिवान जी हमारी शर्तों का बाकायदा पालन करियेगा वरना वह परम प्रभु स्वयं ऐसी परिस्थिति पैदा कर देंगे कि आपको विवश होकर पालन करना पड़ेगा।

श्री गौतम जी की पारिवारिक स्थिति कुछ ऐसी थी कि इनकी शादी हुए काफी दिन (कई वर्ष) व्यतीत हो गये थे एवं इनकी कोई औलाद नहीं थी। इनकी माताजी काफी वृद्ध थी एवं उनको यह कहा करती थी कि बेटा! कोई उपचार एवं उपाय करो वरना पोता-पोती का मुँह देखे बिना ही हम परलोक सिधार जायेंगे। वे और उनकी पत्नी भी औलाद न होने के कारण अत्यन्त दुःखी जीवन व्यतीत कर रहे थे। श्री गौतम जी इस कार्य की सिद्धि हेतु दवा एवं दुआ दोनों करके थक चुके थे। उन बातों का स्मरण होते ही वे निराश एवं उदास हो जाया करते थे। उस नये स्थान पर कार्य आरम्भ करने के साथ ही इनके सहयोगियों एवम् सहकर्मियों ने इनकी उदासी का जब उपरोक्त कारण जाना तो इनके कष्ट निवारण हेतु प्रयत्न करना आरम्भ किया। उन लोगों ने एक ऐसे मुसलमान ओझा का पता लगाया जो इन लोगों के भाग्य क्षेत्र का ही निवासी था एवम् जिसने अपने तान्त्रिक बल से कई दम्पत्तियों को औलाद मुहैया कराई थी। उस मुसलमान ओझा की श्री गौतम जी से भेंट हुई। उसने पहले ही बड़े विश्वास के साथ कहा कि दिवान जी आपको एक साल

के अन्दर ही पुत्र-रत्न की प्राप्ति करा दूंगा। उसने बताया कि इस कार्य में करीब ५००.०० (पांच सौ) रुपयों की आवश्यकता पड़ेगी। दिवान जी ने तत्काल उसे पांच सौ रुपये दे दिये। उसने कहा कि सब सामान लेकर एक हफ्ते बाद आपके निवास-स्थान पर आऊंगा एवम् रात में आपका कार्य कर दूंगा। श्री गौतम जी ने यह बात अपनी धर्मपत्नी एवम् माताजी को बतलायी तो वे लोग भी काफी प्रसन्न हुयीं एवम् उस दिन का बेसब्री से इन्तजार करने लगीं, जिस दिन उनकी मनो-कामना पूर्ति के लिए रात्रि में कार्य किया जायेगा।

एक सप्ताह से पूर्व यानि छठवें दिन ही ओझा ने दिवान जी के निवास स्थान पर पहुँचकर आवाज लगायी। दिवानजी मकान की दूसरी मंजिल में (पूर्व वर्णन में दिया गया श्री प्रभुजी का पूजा स्थल) निवास करते थे। उसने दो-तीन बार आवाज लगायी परन्तु श्री गौतम जी नहीं सुन सके। उस समय भाई ब्रजमोहन जी मकान के नीचे के कमरे में उपस्थित थे। उन्होंने आवाज लगायी कि दिवान जी आपको कोई याद कर रहा है। दिवान जी ने छत के हिस्से से ही देखा, एवम पहचान कर आवाज लगायी कि झीने से ऊपर आ जाइये। शायद दिवानजी यह सोच-कर ऊपर बुला रहे थे कि इस प्रसंग को कोई और न सुन ले। उनकी बात सुनकर ओझा ने कहा कि साहब! मैं झीने पर पैर नहीं रख सकता। उसकी बात सुनकर दिवान जी ने फिर कहा कि अरे भाई! ऊपर आ जाओ, कोई बात नहीं है। परन्तु ओझा ने कहा कि साहब! आप हमारी मजबूरी नहीं जानते, मैं झीने पर पैर नहीं रख सकता। आप ही कृपा करके नीचे आ जाइये। कुछ क्रोध भरी मुद्रा में दिवान जी नीचे आए एवम् बोले, कहो क्या बात है, तुम तो कल सायंकाल आने वाले थे, पहले ही क्यों आ गये? उनकी बात सुनकर ओझा ने बिना कुछ बोले, पांच रुपये उनके सामने रखते हुए कहा कि साहब! आप अपने पैसे ले लीजिए, यह कार्य हमारे बस का नहीं है। दिवानियां एवम् पुलिसिया भाषा में श्री गौतम जी बोले, एक हफ्ते पहले तुम्हारे बस में था तो अब तुम्हारे बस में क्यों नहीं है। उसने हाथ जोड़कर कहा कि, दिवान जी, मैं सत्य कह रहा हूँ यह कार्य हमारे बस में नहीं है। दिवान जी ने कुछ हड़काया भी परन्तु वह हाथ जोड़कर केवल यही कहता रहा कि साहब! आप हमें चाहे जो कुछ भी कहें, यह कार्य हमारे बस का नहीं है। दिवान जी ने पूछा कि उस दिन तुम कैसे कह रहे थे, उसने कहा कि साहब हमसे गलती हुयी। दिवान जी ने पूछा, फिर तुम्हारे बस का कैसे होगा, उसने कहा कि आप यह मकान बदल दें, हमारे बस का हो जायेगा। श्री गौतम जी ने ओझा से प्रश्न किया कि आखिर इस मकान में खराबी क्या है? उसने जो बतलाया वह इस प्रकार है—

"साहब मैं अब रात में यह सोच रहा था कि कल रात में चलकर आपके मकान में आपकी औलाद प्राप्ति हेतु एक बलि चढ़ाऊंगा, तो उसी समय काफी लम्बे चौड़े एवं ऊँचे एक महात्मा हाथमें चिमटा लिए हुए हमारे सामने आये, उनके साथ उनके पीछे गठीले बदन के

एक नाटे कद के सेठ की शक्ल में महात्मा थे जिनके हाथ में छड़ी थी, आये। इन दोनों महात्माओं के शरीर में इतना तेज था कि आँख ठहरना बड़ा ही मुश्किल कार्य था। नाटे कद के महात्मा ने अपनी गगनभेदी गम्भीर वाणी में कहा कि अरे हरामजादे! तू जिस स्थान पर बलि चढ़ाने की बात सोच रहा है वह हम लोगों का निवास स्थान है, उस मकान में ऐसा कार्य बिल्कुल मत करना, और समझ ले यदि हमारे कमरों में जाने हेतु, जीने पर यदि पैर भी रखा तो छड़ी से मार-मार कर अपंग बना दूंगा। क्या बतलाऊँ उनकी बात याद आते ही शरीर भय से काँप जाता है।" इतना कहकर ओझा ने पाँच सौ रुपये दिवान जी के हाथ में पकड़ाये एवम् सलाम करके चलते बना। उसके चले जाने के बाद भाई ब्रजमोहन जी आये एवम् दिवान जी से बोले, दिवान जी! किससे गरमागरम बात हो रही थी, बात क्या है एवम् आपका चेहरा उदास क्यों है? दिवान जी ने पहले तो बताने से इन्कार किया परन्तु जब भाई जी ने बतलाया कि आप लोगों की कुछ बात हमने भी सुनी है तो दिवान जी ने दुःखी मन से पूरे घटनाक्रम का वर्णन किया।

पूरा विस्तृत विवरण सुनने के बाद भाई श्री ब्रजमोहन जी को दया आ गयी एवम् उन्होंने कहा कि आप इधर-उधर कहीं न जाकर मन्दिर में श्री प्रभुजी एवम् श्री महा प्रभुजी के चरण-कमलों का आरती-पूजन एवं जाप किया करें। हमारे श्री प्रभुजी बड़े ही दयालु हैं अवश्य कृपा होगी। इनकी बातों को शिरोधार्य करके इस दम्पत्ति ने हमारे आपके एवम् प्राणीमात्र के भाग्य-विधाता अकारण दयालु श्री प्रभुजी एवम् श्री महा प्रभुजी के स्वरूपों का उनके बताये हुये नियमानुसार आरती-पूजन-वन्दन आरम्भ किया। इसके कुछ समय पश्चात् इनकी पत्नी ने स्वप्न देखा कि श्री गुरुदेव भगवान ने उन्हें एक सेब दिया और कहा कि लल्ली तुम इसे खा जाओ, तुम्हें पुत्र-रत्न प्राप्त होगा। उसके कुछ दिन पश्चात् ही उनकी गोद भरने की आशा हो गयी। इसी घटनाक्रम के बीच में वे स्थानान्तरित होकर चले गये। पिछले साल अर्थात् ८४-८५ में जब भाई ब्रजमोहन जी किसी कार्य के सिलसिले में हस्तिनापुर गये थे तो वहाँ श्री गौतम जी ने इन्हें देख लिया, और पास आकर उचित अभिवादन किया एवम् हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि आपके गुरुदेव भगवान की कृपा से हमें पुत्र की प्राप्ति हो गयी। उन्होंने भाईजी का बड़ा ही आदर-सत्कार किया एवं मन्दिर में चढ़ाने हेतु काफी सामग्री लाये। परन्तु भाई श्री ब्रजमोहन जी ने कहा कि आप स्वयं अपनी पत्नी एवम् पुत्र के साथ हमारे यहाँ मन्दिर में यह सब भोग सामग्री अर्पित करें। श्री गौतम जी ने उनकी बात स्वीकार कर वैसा ही करने का निश्चय किया। इस चरित्र को लिखते समय गुरु-भाई-बहनों द्वारा गाये जाने वाले भजन की कुछ पंक्तियाँ स्वतः ही याद आ रही हैं :—

सब पर करुणा करते,
केवल शिष्यों पर ही नहीं।
मेरे प्रभुजी से तो बढ़कर,
कोई भी नहीं।
देखने की इच्छा हो
तो देख लो सही। ★

जगत्पिता आदि शिव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज

(पृष्ठ २२ का शेष)

में स्थापित कर दिया है। ऋग्वेदिक सूक्तों में एक स्थान पर आदिशिव का वर्णन करते हुए कहा गया है—"वे अत्यन्त शक्तिशाली हैं, स्वर्गलोक में चक्रवर्ती वराह हैं, सर्वश्रेष्ठ वृषभ हैं। वे सदा यौवनपूर्ण रहते हैं, वे शूर-वीरों के अधिपति हैं। पर्वतों में स्थिर नदियों में जल प्रवाह उत्पन्न करते हैं। जो उनके प्रति आस्था नहीं रखते, उनके सिर वे छिन्न-भिन्न कर देते हैं, किन्तु जो उनके उपासक हैं, उनके लिए वे उपकारी होते हैं, इसीलिए उन्हें आदिशिव कहा जाता है।"

प्राकृतिक शक्तियों के प्रति ही तत्कालीन मानव की ज्ञान दृष्टि केन्द्रित होने के कारण इस तरह की स्तुतियाँ वैदिक ऋचाओं में की जाती हैं। आदिशिव को मरुतों का पिता भी निर्दिष्ट किया गया है।

आदिशिव प्रभु रामलाल को चराचर का ईश्वर पालक, पोषक, संहारक आदि निरूपित किया गया है तथा भव, शर्व, पशुपति, भूतपति, आदिरूपों में उनकी उपासना की जाती है। पशुपति का तो त्रिधा अर्थ स्पष्ट किया गया है, वहाँ मनुष्यों को भी पशु की संज्ञा दी गई है। आदिशिव की स्तुति करते हुए ऋषि कहते हैं—"जिसमें समस्त भुवन (लोक) निवास करते हैं, जो नाना वस्तुओं को धारण करते हैं वह आदिशिव ब्रह्माण्ड-व्यापी हैं। अग्नि में, जल में, औषधियों में, लताओं में उनकी संरचना कर वे निवास करते हैं।"

सृष्टि, सभ्यता और संस्कृति के विकास क्रम में ही आदिशिव का महत्व स्थापित हुआ है। चिन्तन में "एको रामलाल न द्वितीयायतस्थु" कहकर परब्रह्म जैसी अद्वैत सत्ता के रूप में ऋषियों ने उन्हें मान्यता दी है। प्रभु श्री रामलाल की साहित्य में उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक जीवन्त कथायें हैं। इन कथाओं में इतना गहन रहस्य है और आदि-शक्ति है कि सामान्य बुद्धि उसे ग्रहण ही नहीं कर सकती।

हमारे साहित्य का कोई अवलोकन करे तो यह स्पष्ट होगा कि प्रभु श्री रामलाल ही ऐसे देवता हैं जिनके अवतार भी स्वयंभू हैं अर्थात् वे अयोनिज हैं। वह परब्रह्म सत्ता का पर्याय है, वह अव्यक्त रूप में निर्गुण, निराकार और अविकृत है किन्तु सम्पूर्ण संसार उनकी विभूति भी है। इसी विभूति के साथ वह परमब्रह्म अपनी लीला करते हैं।

विज्ञान यह स्वीकार करता है कि अग्नि तत्व का अस्तित्व इस पृथ्वी से सूर्यलोक तक है। अग्नि तत्व का अस्तित्व एक स्थायी शक्ति की ऊर्जा का पर्याय है। सम्पूर्ण शून्य में यह अग्नि तत्व किस तरह विद्यमान है। इसका उदाहरण हम अपने दैनिक जीवन में सामान्य से उदाहरण से सिद्ध कर सकते हैं।

आदिशिव तत्व देव के रूप में है, उसी तरह अग्नि हमारे ऋषियों की बुद्धि का चमत्कार ही कहा जा सकता है। आदिशिव तत्व के संहारक और उत्पादक रूपों के रहस्य को भी हमारे वैदिक ऋषियों ने सुन्दर रूपकों में स्पष्ट किया है। अग्नि इस संसार में सब कुछ जलाकर राख कर देती है, यह तो प्रत्यक्ष दिखलाई देता है, इस सत्य को जब हम स्वीकार कर लेते हैं तो यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि मेघों में जो बिजली होती है, वही वर्षा कराती है और उससे ही जीवन

के अंकुर फूटते हैं। अग्नि के ये दोनों ही रूप शाश्वत हैं, यह संहारक भी है।

आदिशिव महाप्रभु श्री रामलाल जी की व्याख्या करने के लिए हमें अपने पुराणों का ही आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। वे अत्यन्त रहस्यमय हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से उन्हें नेपालवासी भी कहा गया है और कैलाश-वासी भी।

भगवान आदिशिव महाप्रभु रामलाल जी महाराज के समक्ष तो प्रत्येक दिवस चैतन्य है, प्रत्येक क्षण आनन्दित है, प्रत्येक क्षण तरंगित व उल्लसित है और इसी से प्रभु रामलाल की संज्ञा से विभूषित हैं।

भगवान आदिशिव ने इस धरा पर अवतरित होकर कई-कई रूप एक साथ धारण किए और योग प्रचार किया। सिद्धयोग के आदि प्रवर्तक महाप्रभु श्री रामलाल जी ने आल्हाद के किन्हीं क्षणों में अपने समस्त शिष्यों को एकत्रित कर उनके प्रति विशेष कृपालु होकर उन्हें दिव्य ज्ञान दिये और उन्हें अलौकिक रहस्य बताये।

अतः सभी को मन वचन और कर्म से एकाग्रचित्त होकर ऐसे ही महासद्गुरु का वरण करना चाहिए जो कि आदिशक्ति हैं, आदिशिव है और परमेश्वरी अनुग्रहिका शक्ति है। उपनिषद् का अर्थ शिष्य का सद्गुरु के सानिध्य में जाना है, और इतना अधिक कि वह सद्गुरु को अपने आप में आत्मसात् कर ले।

"ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि
वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथ,
बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं
ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्या।
मा मा ब्रह्म निराकरोद
निराकरणमस्तु,
तदात्मनि निरते च उपनिषत्सु
धर्मास्ते मयि सन्तु सन्तु ॥"

अर्थात् मेरे सभी अंग वृद्धि को प्राप्त हों। वाणी, घ्राण, (प्राणवायु) चक्षु, श्रोत्र, बल और शेष सभी इन्द्रियां वृद्धि को प्राप्त हों अर्थात् मृत्युञ्जयी बनें। हे सद्गुरुदेव! आपको शरीर के रोम-रोम में धारण करके, आपका सामीप्य व सानिध्य प्राप्त करके ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। वास्तव में ही आप सर्वोपनिषद् ब्रह्मस्वरूप हैं। मुझसे न तो कभी ब्रह्म अर्थात् सद्गुरु का त्याग हो और न ही ब्रह्म अर्थात् सद्गुरुदेव मेरा त्याग करे।

★

(पृष्ठ ४१ का शेष)

ललाट के ऊपर भाग में बिन्दुमयी विकसित शक्ति है जिसमें जीवात्मा सूक्ष्म रूप से विद्यमान है। हृदय में वह स्थूलरूप से है। सहस्रार में वही जीवात्मा परमात्म रूप में होता है। योगोपनिषद् में उल्लेख है कि जो नाद है वही बिन्दु है और बिन्दु ही चित्त है।

'नादो बिन्दुश्च चित्तं च
त्रिभिरैक्यं प्रसाधयेत्।'

मन से ही बिन्दु की उत्पत्ति है जैसे दूध से ही घी की उत्पत्ति है। अतः हृस्व प्रणव की ध्वनि से बिन्दु का मन्थन कर मन वायु और चित्त को विशुद्ध बनाये। एकान्त में बिन्दुजय की साधना करे। उसके लिए प्रारम्भ में नौली क्रिया, अश्विनी मुद्रा, वज्रोली, अमरोली नभोमुद्रा, योनिमुद्रा का किसी परिपूर्ण गुरु के सानिध्य में अभ्यास दृढ़ कर ले जिससे कुण्डलिनी प्रबोधन होकर प्राणवायु सुषुम्ना मार्ग से मस्तक में ऊपर चढ़ती चली जाय। यह साधना सिद्धों की साधना है! विषयी विलासी व्यक्ति इसके अधिकारी नहीं है। ★

आस्तिकता—एक अध्ययन

श्री हिमांशु (नई दिल्ली)

"Faith may be defined briefly as an illogical relief in the occurrence of the improbable." —H. L. Menchen

"An Atheist is a man who has no invisible means of support" —William Jennings Bryan.

आजकल विशेषकर पाश्चात्य जगत् में एक प्रचण्ड सन्देह का, अविश्वास का युग चल रहा है। प्रत्यक्ष प्रमाण पाये बिना सहज ही किसी बात को मानने के लिए, उस पर विश्वास करने के लिए कोई तैयार नहीं है। ये लोग सूक्ष्म और अतीन्द्रिय तत्वों तक को स्थूल रूप में प्रयत्न न देख सकने पर एकदम अस्वीकार कर देते हैं। इस अविश्वास के लिए सब देशों के धर्म रक्षक और धर्म प्रचारक अत्याधिक मात्रा में जिम्मेदार हैं। धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार, धर्म की दुहाई देकर नाना प्रकार के स्वार्थों को सिद्ध करने की चेष्टा की जा रही है। धर्म विश्वास ने आजकल अनेक स्थानों में शांति स्थापन और उन्नति साधन में सहायक न होकर सामाजिक और नैतिक पूर्णता प्राप्त करने के लिए जिन सुधारों का होना आवश्यक है, उनमें बाधा उत्पन्न करना आरम्भ कर दिया है। बहुत सी जगहों में प्रेम के स्थान पर भय दिखाकर लोगों को धर्ममत विश्वास स्थापित करने के लिए बाध्य किया जाता है। आज जरूरत इस बात की है कि भगवत्तत्व और साधना प्रणाली को इतने सुन्दर रूप में ज्ञान-विज्ञान की भित्ति पर स्थापित किया जाए जिससे विज्ञान की उन्नति धर्म मत पर आक्रमण न कर उसका पोषण करना आरम्भ कर दे।

वास्तव में पृथ्वी पर नास्तिकों की संख्या अधिक नहीं है। जो लोग जीवित रहना चाहते हैं, स्वस्थ रहने, ज्ञान प्राप्त करने, आनन्दपूर्वक रहने के लिए सचेष्ट हैं वे जाने या अनजाने में सच्चिदानन्द स्वरूप का, भगवान का ही अनुसन्धान कर रहे हैं। अतएव जिनका भगवत् भाव और धर्म ज्ञान हमारे साथ मेल नहीं खाता उन्हें हम लोगों को नास्तिक नहीं समझना चाहिए।

सब देशों के सिद्ध आदर्श महात्माओं ने इस भगवत्तत्व और उसकी साधना प्रणाली का निर्देश कर इस बात की यथा सम्भव चेष्टा की है कि सर्वसाधारण उस आदर्श के अनुसार जीवन बिताकर परम शांति प्राप्त करें। भगवत्तत्व परम तत्व है चाहे वह किसी भी नाम से, रूप से प्रचलित क्यों न हो। यह जिस परिमाण में विज्ञान, दर्शन और अनुभव सम्मत होगा ठीक उसी परिमाण में इसका वास्तविक स्वरूप भी युक्तियुक्त और ग्राह्य मालूम होगा। विज्ञान शास्त्र परम तत्व को एक ऐसा शक्ति जातीय पदार्थ मानता है जो विभिन्न आकारों के भीतर से होकर अपना स्वरूप प्रकट करने में व्यस्त है। जिस तरह एक ही विद्युत शक्ति विभिन्न यन्त्रों का अवलम्ब लेकर विभिन्न

(शेष पृष्ठ ५८ पर)

★ प्रभू रामः समागतः ★

❀ श्री द्वारिका प्रसाद शर्मा (लखनऊ)

(संस्कृत भाषायाम्)

१. पावयितुं धराधाम, सिद्धयोगे, प्रदीक्षितुम् ।
रक्षितुं स्वीयभक्तांस्तु, प्रभू रामः समागतः ॥

२. लीला-विग्रह संधार्य, जनुर्मृत्वाऽमृते भरे ।
गण्डारामसुतो भूत्वा प्रभू रामः समागतः ॥

३. जननी भागवन्ती च, कौसल्या मातृसदृशा ।
चैत्र शुक्ल नवम्यां वै, प्रभू रामः समागतः ॥

४. युगे-युगे सत्पुरुषाः, विश्वे प्रत्यापयन्ति हि ।
विहाय द्यौः धराधाम्नि, प्रभू रामः समागतः ॥

५. सत्यत्रेता द्वापरेषु, वैविध्यनामरूपयोः ।
आदिदेवः, राम-कृष्णौ, प्रभू रामः समागतः ॥

६. दिव्यतेजाः स्वतेजोभिः, पावयन् पदपांशुभिः ।
जनान् दिव्यान् प्रकुर्वन्, प्रभू रामः समागतः ॥

७. द्विसहस्रोनाकंशते: (१८८८ ई०) द्विसहस्रोनाच रुद्रकैः (१९४५ सं०) ।
चैत्र शुक्ल नवम्यां च, प्रभू रामः समागतः ॥

८. गुरुगुरुममृतसरं, पाविष्ठं पावनान्ततः ।
योगीशः सिद्धयोगी च, प्रभू रामः समागतः ॥

९. शैशवं च वयः यस्य, पितृ वत्सलतामयात् ।
धन्यौ नून शिशुः पितरौ, प्रभू रामः समागतः ॥

१०. जन्मना संस्कृतो यस्तु, दिव्यचक्षुश्च योगवान् ।
गुर्वंशयोगिन युक्तं, प्रभू रामः समागतः ॥

११. सर्वदा समवृत्तीकः कर्ता-धर्ता च योगिनाम् ।
परित्राता योगिनां वै, प्रभू रामः समागतः ॥

१२. मूलवस्य परेशो यो, मोहतेग्टश्च यः प्रभुः ।
उद्धर्ता रामरत्यास्तु, प्रभू रामः समागतः ॥

(शेष पृष्ट ५२ पर)

-: प्रभुवर रामलाल जी आये :-

(हिन्दी रूपान्तर)

१. पावन करने धरा धाम को, सिद्धयोग में दीक्षित करने ।
भक्तजनों की रक्षा करने, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

२. लीला का विग्रह धारण कर, अमृतसर की जन्मभूमि पर ।
गण्डाराम तनय कहलाकर, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

३. माता भागवन्ति कहलाईं, रामजननि कौसल्या नाईं ।
चैत्र शुक्ल नवमी तिथि आई, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

४. महापुरुष युग-युग में आते, विश्व हेतु सन्देशा लाते ।
दिव्यधाम तज धराधाम पर, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

५. सतयुग त्रेता द्वापर युग में, विविध रूप औ विविध नाम में ।
आदिदेव श्री राम-कृष्ण में, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

६. दिव्य पुरुष निज दिव्य तेज से, पावन पदरज, पदन्यास से ।
दिव्य शक्तिमय जन-जन करते, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

७. ईस्वी उन्नीस सौ अठासी में, संवत् उन्नीस सौ पैंतालीस में ।
चैत्र शुक्ल की नवमी तिथि में, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

८. गुरु नगरी अमृतसर को ही, करने पावन, पावनतम ही ।
सिद्धयोगि बन योगेश्वर ही, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

९. शैशवकाल आयु के जिनके, मातृ-पितृ की वत्सलता के,
धन्य बाल वह जनक-जननि के, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

१०. जन्मजात संस्कारवान् थे, योग परायण, दिव्य दृष्टि थे ।
कर अयुक्त को योगनिष्ठ थे, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

११. क्षण-क्षण वृत्ति समाहित वाले, योगारूढ़ कराने वाले ।
योगीजन के जो रखवाले, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

१२. मुलखराज के परमेश्वर थे, चन्द्रमोहनाराध्य रहे थे ।
रामरती के उद्धारक थे, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

(शेष पृष्ठ ५३ पर)

प्रभू रामः समागतः

(पृष्ठ ५० का शेष)

१३. संस्कारानुसारि दीक्षां वै, जीवनं नव-आसनैः ।
योगिराट् पदवीदातुं, प्रभू रामः समागतः ॥

१४. उद्धर्तुं मुक्तयनिर्गं, शिष्यां तस्य परीक्ष्य च ।
जनेषु तं व्यापयितुं प्रभू रामः समागतः ॥

१५. तथैव गोपालानन्दः अभूत्पट्टस्तु शिष्यकः ।
महिम्ना मण्डलीकर्तुं प्रभू रामः समागतः ॥

१६. दृष्टोऽस्माभिर्गुरुवरः, योगिवर्यः मनोनिभः ।
सुशीतलः सुसौम्यश्च, प्रभू रामः समागतः ॥

१७. अस्यां शरणं गता ये, तारणे प्रभवास्तु ते ।
शरण्यः सः कृपालुश्च, प्रभू रामः समागतः ॥

१८. तपोभूमिः सर्वाईस्थः, तद्ग्रामस्थ गुहा च वै ।
रजांसि पावितानि वै, प्रभू रामः समागतः ॥

१९. अगण्यानि चरित्राणि, वाग्गन्तु न क्षमा च वै ।
कर्तुं भक्तुं समर्थश्च, प्रभू रामः समागतः ॥

२०. विहायसा गतिं कृत्वा, गुहाद्वारा कृतान्तु वै ।
एतादृशः समर्थो यो, प्रभू रामः समागतः ॥

२१. कृपांशेन कृतो योगी, योगाग्नि देहकांचनः ।
प्रभोः स्वरूपं वै धृत्वा, प्रभू रामः समागतः ॥

२२. यद्दीक्षिता वयं शिष्याः, मन्त्रवाक् संश्रुतं च वै ।
सद्धन्यानि जनूंषि नो, प्रभू रामः समागतः ॥

२३. अस्मद्गुरुर्न नो मध्ये, वपुः संत्यज्य लीलया ।
सूक्ष्मीभावेन हृत्स्थो यो, प्रभू रामः समागतः ॥

२४. यथा सम्पादिताः कृत्याः, गुरुणा निज गुरोस्तु वै ।
अवशिष्टास्तु ते कृत्याः, सम्पाद्याः सर्वशिष्य कैः ॥

२५. उदारा गुरवोऽस्माकं, ददतिस्म यशोद्गरान् ।
करिष्यन्ति तु त एव, दत्वाऽस्माकं यशश्च तत् ॥

प्रभुवर रामलाल जी आये

(पृष्ठ ५१ का शेष)

१३. संस्कारोचित दीक्षा देने, नव-आसन से जीवन देने ।
योगिराज की पदवी देने, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

१४. मुलखराज से उच्छृंखल को, चिन्हित कर उनकी निष्ठा को ।
पूजनीय जन-जन करने को, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

१५. इसी भाँति गोपालानन्द जी, हुए अग्रणी पट्ट शिष्य भी ।
महिमा-मण्डित करने उनको, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

१६. हमने देखे गुरुवर निज के, योगिवर्य चन्द्रमा सरीखे ।
मोहन-चन्द्र सुशीतल भी वे, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

१७. अन्य अनेकों शरणागत जो, तारण योग्य बने और वो ।
शरणागत वत्सल कृपालु वो, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

१८. तपःस्वली उनकी सवाई में, उसी गाँव की सिद्ध गुफा में ।
हुई धरा पावन कण-कण में, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

१९. चरित अनन्त महाप्रभु के हैं, वाणी अक्षम गणना में है ।
'कर्त्तुमकर्त्तुम्' वे समर्थ हैं, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

२०. गमनाकाश किया सवाई से, सिद्ध गुफा आवृत कपाट से ।
थे समर्थ वे योगी ऐसे, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

२१. कृपा अंश भी महायोगि बन, योगवह्नि से तप्त हेम तन ।
प्रभु स्वरूप को ही कर धारण, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

२२. दीक्षित शिष्य हुए हम उनके, मंत्रवाक् गुरुमुख से सुन के ।
जीवन धन्य हुए हम सबके, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

२३. यद्यपि प्रभु न मध्य हम सबके, लीला-वपु निज तनु को तज के ।
सूक्ष्म रूप में सभी हृदय में, प्रभुवर रामलाल जी आये ॥

२४. जैसे प्रभु ने प्रभुवर निज के, कार्य संवारे तन, मन, धन से ।
वैसे ही कर्तव्य सभी के, शेष कार्य पूरित करने के ॥

२५. वे उदार थे अतिशय इतने, करते स्वयं इतर यश देते ।
वही करेंगे सभी करेंगे, हमको-तुमको गणनिमित्त वे ॥

(पृष्ठ ४६ का शेष)

आस्तिकता—एक अध्ययन

कार्य करती है उसी तरह एक शक्ति ने जगत के विभिन्न तत्वों के भीतर से होकर विभिन्न रूपों में विभिन्न प्रकार से आत्म प्रकाश करके जगत को सुन्दर और मधुर बना दिया है। यह शक्ति ही प्रकृति की अन्तरात्मा है। दार्शनिक पण्डितों ने इसमें सत्, चित् और आनंद कहकर और किसी न किसी उन्नत तत्व के रूप में इसी का वर्णन किया है। सभी पदार्थ जीवित रहने, जानने, जनाने, आनन्द देने और आनन्द लेने में व्यस्त हैं। इस सत्ता, चैतन्य और आनन्द की चरम अवस्था ही लक्ष्य करके पण्डितों ने इसका उल्लेख भगवान से किया है। इस सच्चिदानन्द तत्व को स्वरूपतः 'मूकास्वादनवत्, अनिर्वचनीयम्, स्वयमेव तत्वम्, स्वयमेव बोध्यम्' कहा गया है।

भगवान बुद्ध ने इस चरम तत्व को 'शून्य' कहा है। जागतिक भावों को, कामना, वासना, आसक्तियों को शून्य में परिणत किए बिना यह वचन-मन से अगोचर स्वयं प्रकाश तत्व प्रकट नहीं हो सकता, अनुभूत नहीं हो सकता। हठयोगियों ने इस चरम तत्व को अनेक स्थानों में अव्यक्त और कहीं कहीं ज्योतिर्मय आदि रूपों में प्रकट किया है। उनके मत से भी मन को निर्विषय, कामना, वासना संस्कार से मुक्त करना वास्तविक साधन है। 'ध्यानं निर्विषयं मनः'। राजयोगियों के मत से परम तत्व ज्योतिर्मय ब्रह्म आदि रूपों में अनुभूत होता है। चित्त को शुद्ध, शांत, संस्कार आसक्ति रहित बनाने की चेष्टा ही साधना है। सांख्य मतानुसार चरम तत्व है पुरुष को प्रकृति से मुक्त कर चरम कैवल्यावस्था स्थिति प्राप्त करना। यह ज्ञान प्रधान मत है। कोई-कोई सांख्य-मतावलम्बी प्रकृति पुरुष से ऊपर भी एक उत्तम पुरुष को चरम तत्व बतलाते हैं।

वर्तमान समय में मानवजाति जिस रूप में उच्छृंखलता-विध्वंस के मार्ग पर अग्रसर हो रही है उससे त्राण पाने के लिए बुद्ध की मैत्री और दर्शनशास्त्र का सद्भाव एक प्रधान उपाय है।

वेदान्तियों में शुद्ध अद्वैत मतवालों का परमतत्व गुणातीत, वचन मन से अगोचर, अखण्ड, अद्वय ज्ञान तत्व है। उनकी साधना चित्त को शुद्ध कामना, वासना आदि से रहित करके परब्रह्म का ध्यान करना है। विशिष्टाद्वैत मतवालों का परमतत्व प्राकृत गुणों से रहित, अनन्त गुणों के आधार अनन्तवीर्य, अनन्त सौन्दर्य, माधुर्य, ज्ञान, प्रेम और आनंद से परिपूर्ण सच्चिदानन्द श्री भगवान हैं। उनकी साधना है दास्यभाव से श्री भगवान में प्रीति बढ़ाना और उनके प्रिय कार्य का सम्पादन करना।

द्वैतवादियों के मत से परम तत्व अखण्ड अद्वय सच्चिदानन्द विग्रह अप्राकृत रूप में सगुण सक्रिय साकार है। इनकी साधना है शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर भाव के द्वारा भगवान को प्रसन्न करने की चेष्टा करना और उनका अधिकार प्राप्त करने के लिए चौसठ प्रकार से साधनाओं का अनुष्ठान करना। ब्रह्मवादी परम तत्व को निर्गुण, निराकार, चैतन्य स्वरूप अनन्त दया, प्रेम और ज्ञान से विभूषित मानते हैं और चित्त को शांत करके, शुद्ध करके उस परब्रह्म के ध्यान, धारणा और समाधि के द्वारा उसी के भाव से परिभावित होने को साधना मानते हैं।

ईसाई साधकों ने परम तत्व को स्वर्गीय पिता मानकर उन्हें स्वर्ग राज्य में स्थापित किया है। उन्होंने अपने प्रिय पुत्र आदर्श ईसा को जगत में भेजा जिन्होंने आदर्श जीवन प्राप्त करने की साधन प्रणाली की शिक्षा जीवों को

प्रदान की। स्वर्ग राज्यों में जाकर पिता की सेवा का अधिकार प्राप्त करना और आनन्द का उपभोग करना ही उनका लक्ष्य है। मुसलमानों का परम तत्व निराकार एकेश्वरवाद है। भगवान अनन्त गुणों के आधार, प्रेममय, अतुल ऐश्वर्य के अधिपति हैं। एक ईश्वर में विश्वास रखना और जीवों के प्रति भ्रातृभाव और प्रेम रखने की चेष्टा करना इनकी साधना है। उनमें जो सूफी होते हैं वे शुद्ध अद्वैत और विशिष्टाद्वैत मत के अनुसार साधना करते हैं।

गाणपत्य परम तत्व को सिद्धिदाता मानते हैं। चित्त को कामना, वासना और आसक्ति से शून्य करके फलाकांक्षा से रहित होकर विशेष रूप से कर्मयोग के द्वारा सिद्धि प्राप्त करने की चेष्टा करना इनकी साधना है। शाक्तमतानुसार परम तत्व शिव-शक्ति से युक्त ब्रह्मतत्व है। शक्तिमान धारणा से अतीत है। शक्ति ही अनुभववेद्य है और इस कारण हमारी आराध्या है। चित्त को शून्य (शव) में परिणित करके, आद्याशक्ति के स्वरूप की उपलब्धि करके उसी शक्ति से शक्तिमान होकर अपना और जगत् का कल्याण करने के उपयुक्त और तत्पर होने की चेष्टा करना इनकी साधना है। अनाधिकारी के हाथ में पड़कर साधना के विकृत हो जाने की जिम्मेदारी सच्चे साधक पर नहीं है।

वैष्णव मतानुसार परम तत्व ज्योतिर्मय, सच्चिदानन्द विग्रह, अनन्त, अप्राकृत गुणों का आकार है। परम तत्व की शिक्षा देने के लिए परम करुणामय श्री भगवान ने राम-कृष्ण आदि रूपों में अप्राकृत शरीर से पृथ्वी पर अवतीर्ण होकर, जीव को अपना अप्राकृत रूप दिखाकर, अप्राकृत भगवत धाम में ले जाकर आनन्द भोग का मार्ग दिखा दिया है। इनकी साधना प्रणाली है इन्द्रिय संयम के द्वारा चित्त को शुद्ध शांत और पवित्र बनाकर अप्राकृत गुण, ज्ञान और प्रेम से विभूषित होकर भगवान से प्रीति और उनका प्रिय कार्य करना तथा जीवों की सेवा करने की चेष्टा करना।

गीता के मत भगवान गति, विभु, भर्ता, साक्षी, निवास, शरण, सुहृद, आदि गुणों से भूषित उत्तम पुरुष है। साधना है इन्द्रिय संयम और चित्त शुद्धि के द्वारा गुणातीत, द्वन्द्वातीत अवस्था में स्थित होकर कर्म ज्ञान और भक्ति के सामंजस्य और पूर्ण परिणति के द्वारा पुरुषोत्तम की शरणागति तथा उनके भाव से भावित होकर उनकी इच्छा पूर्ण करना—सर्वतो भाव से सर्वभूत हित में रत रहना।

विज्ञानशास्त्र जगत के परम तत्व का निर्णय करने में अभी तक सचेष्ट है और उस तत्व के समस्त गुणों और शक्ति से भूषित होकर उसी शक्ति की सहायता से जगत का सब प्रकार से हित करने में नियुक्त रहने का उपदेश देता है।

भक्तों के परम तत्व भगवान हैं। वास्तविक भक्त केवल दार्शनिक और वैज्ञानिक तत्व को लेकर तृप्त होने के लिए प्रस्तुत नहीं होते। दूसरों के लिए भगवान सिर्फ एक बात है वे केवल बातों में भगवान का अस्तित्व स्वीकार कर इस प्रकार संसार में रहते हैं जिससे मालूम ही नहीं होता कि वे भगवान में विश्वास करते हैं। वे मुँह से कहते हैं कि भगवान सब देखते हैं परन्तु उन्हें अन्याय कार्य करने में कोई संकोच नहीं होता। ऐसे अनेक मुँह के भक्त और भाव तथा क्रिया नास्तिक होते हैं। बहुत से लोग डरते हुए, स्वार्थसिद्धि के लिए या प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए मुँह से भगवान-भगवान चिल्लाते हैं और साधन भजन का ढोंग करते हैं परन्तु उनमें भगवत्भाव दिखाई नहीं देता। सच्चे भक्त, सच्चे साधक के लिए भगवान उनके लिए सर्वस्व हैं। भक्तों के भगवान उनके

लिए 'श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुः हैं।' वे पुत्र से, वित्त से अन्य सब चीजों यहां तक कि आत्मा से भी अधिक प्रिय है। इसीलिए तो वे परमात्मा हैं। 'प्रेयः पुत्रात् प्रेयो वित्तात प्रेयोऽन्यस्मात् सर्वस्मात यदेव अन्तरतम आत्मा।'

ईश्वरतत्व के सम्बन्ध में गौण रूप से मतभेद होने पर भी मुख्यतः विशेष मतभेद नहीं है। अधिकांश मतानुसार जगत की सृष्टि, स्थिति और लय के कर्ता, सर्वव्यापी, अनन्त गुण ज्ञान, प्रेम और आनन्द के मूलाधार, परम कारुणिक जीव के कल्याण-साधन में तत्पर एक अनिर्वचनीय तत्व विशेष को 'भगवान' शब्द के द्वारा निर्देश किया गया है। वे एक ही आधार में विधान और विधाता हैं, समस्त जगत उनकी मूर्ति है, विधान के द्वारा ही वे अनुमेय और अनुभूत हैं। उनके प्रति अनन्य प्रेमभाव रखना और उनके प्रिय कार्यों को करना ही उपासना या साधना है।

भगवान में क्यों विश्वास करें, उनमें विश्वास करने से क्या लाभ है, विश्वास नहीं करने से क्या अनिष्ट हो जाएगा इन बातों को विशेष रूप से अनुभव करने के लिए हमें यह अनुभव करना होगा कि वे हमारे भीतर और बाहर बैठकर किस प्रकार हमारा कल्याण करने में लगे हुए हैं और उनकी उस कार्यप्रणाली को अनुभव करके जब हम अपने देह यन्त्र को, अपने मन को उनकी उस सहायता पाने के अनुकूल बना लेंगे, तब इस बात का हमें अनुभव होगा कि वे किस रूप में कितनी सहायता कर सकते हैं। हम किस प्रकार पूर्णता प्राप्त करके पूर्णशांति, पूर्णज्ञान का अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। हमारे इस देह और जगत के समस्त तत्वों की आलोचना जिन लोगों ने विशेष रूप से की, उनका मत है कि हमारे इस देह के अन्दर सभी तत्व अवस्थित हैं। इसके स्नायु केन्द्रों (Nerve centers) में समस्त शक्तियां बीजरूप से, सूक्ष्मरूप से निद्रित (Latent) अवस्था में विद्यमान हैं। कार्य विशेष के द्वारा, भाव-विशेष के द्वारा उन शक्तियों को जाग्रत (Patent) करने पर हम सब प्रकार की अलौकिक शक्तियां प्राप्त कर सकते हैं। भगवान हमारे अन्दर पूर्ण शक्ति, पूर्ण ज्ञान और आनन्द के साथ विराजमान हैं। वे प्रकट होने के लिए सचेष्ट हैं। हमारी अज्ञानता, हमारे कुसंस्कार, हमारी कामना, वासना, आसक्ति प्रकट होने में बाधा पहुंचा रहे हैं। इन बाधाओं को दूर कर उसके प्रकट होने का मार्ग खोलना ही साधना है। अतएव भगवद्-विश्वास, भगवत्साधना हम लोगों को भगवद्-भाव से भर सकती है। इससे अधिक लाभ होना दुर्लभ है अतः उसके अभाव में जितना अनिष्ट है उसकी अपेक्षा अधिक अनिष्ट और किसी बात से नहीं हो सकता।

ईश्वर के प्रति विश्वास एवं भक्ति भय से हो या प्रेम से हो, मनुष्य को हिंसा-द्वेष, लड़ाई-झगड़ों से बचाती है और समस्त जीवों के प्रति मधुर भाव की सृष्टि करती है। भक्ति के प्रभाव से जीवन मधुर हो जाता है, समाज मधुर हो जाता है, जगत मधुर हो जाता है। आज पृथ्वी की रक्षा करके उन्नति एवं शांति की ओर जाने के लिए एक मात्र ईश्वर में निष्ठा एवं सच्ची साधना ही समर्थ है।

योगेश्वर प्रभु रामलाल अष्टोत्तरशत-मन्त्रमाला

ॐ श्री पूर्णचन्द्र पन्त

यह सर्वविदित है कि काक नाड़ी संहिता में की गई भविष्यवाणी के अनुसार योग-योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का इस युग के एक अवतारी पुरुषोत्तम के रूप में आविर्भाव हुआ है। आप श्री राम की समष्टि, श्री कृष्ण का योग-ऐश्वर्य एवं योग माया तथा भगवान सदाशिव की सद्गुरुसत्ता को लेकर एक पूर्ण सद्गुरु के रूप में इस भूमण्डल पर अवतरित हुए हैं। आप स्थूल शरीर से तो हजारों वर्षों से हिमालय में समाधिस्थ हैं। किन्तु संस्कारी आत्माओं के उद्धार के लिये समय समय पर विविध नामों और रूपों में प्रकट होते रहे हैं। निराकार रूप से तो आप संस्कारी आत्माओं के साथ सदा रहते ही हैं।

प्रस्तुत अष्टोत्तरी में प्रभुजी के विराट स्वरूप की उपासना की गई है। इसमें सभी नाम वेदोक्त हैं और सद्गुरु तत्व के बोधक हैं। इस नामावली के द्वारा श्री प्रभुजी को श्रद्धा-पूर्वक नमन करने से, स्नान कराने से, अक्षत-पुष्प आदि अर्पण करने से या मन्त्रमाला के रूप में इन पावन नामों का जप करने से भगवान सदाशिव, श्री राम, श्रीकृष्ण, गणपति देव एवं सद्गुरु देव इन सबकी पूजा हो जाती है और इन अनादि सिद्ध महायोगियों की कृपा से साधक का हर प्रकार से कल्याण हो जाता है। वे पतित पावन श्री प्रभुजी अपने अभयप्रद चरण-कमलों की भक्ति का वरदान देकर हम सबका उद्धार करेंगे, इस आशा के साथ यह अष्टोत्तरी प्रभु भक्तों की सेवा में प्रस्तुत है।

[अथ श्री प्रभु रामलाल अष्टोत्तरी]

विनियोग

(सर्व प्रथम हाथ में या आचमनी अथवा चम्मच में थोड़ा जल लेकर निम्नलिखित मन्त्र को पढ़िये और मन्त्र पूरा हो जाने पर हाथ में थामे जल को दूसरे पात्र में डाल दीजिये।)

ॐ अस्य श्री प्रभु रामलाल अष्टोत्तर शत मन्त्र मालायाः काक भुशुण्डी, चन्द्रमोहन, भुवनराज, गोपालानन्द, देवराहा, हरीहरानन्द प्रभृतयः ऋषयः श्री सदाशिव देवता, "रं" बीजम, "लं" शक्तिः, "ओम" कीलकम् सद्गुरुदेव प्रभु रामलाल प्रीत्यर्थे जपे विनियोग :।

मन्त्रमाला

१. ॐ प्रभु रामलाल परब्रह्मणे नमः
२. ॐ प्रभु रामलाल मम सद्गुरुवे नमः
३. ॐ प्रभु रामलाल जगद् गुरुवे नमः
४. ॐ प्रभु रामलाल गंडारामात्मजाय नमः
५. ॐ प्रभु रामलाल ज्योतिपालात्मजाय नमः

६. ॐ प्रभु रामलाल भागवन्ती नन्दनाय नमः
७. ॐ प्रभु रामलाल सिद्धेश्वराय नमः
८. ॐ प्रभु रामलाल नेपाल वासिने नमः
९. ॐ प्रभु रामलाल वागमती तट वासिने नमः
१०. ॐ प्रभु रामलाल सिद्धगुफा वासिने नमः
११. ॐ प्रभु रामलाल योगिनां हृदयवासिने नमः
१२. ॐ प्रभु रामलाल योगमार्त्तण्डाय नमः
१३. ॐ प्रभु रामलाल योगनिधये नमः
१४. ॐ प्रभु रामलाल योगप्रवर्त्तकाय नमः
१५. ॐ प्रभु रामलाल योगिभिर्ध्यान गम्याय नमः
१६. ॐ प्रभु रामलाल पतित तारकाय नमः
१७. ॐ प्रभु रामलाल रामरसोद्धारकाय नमः
१८. ॐ प्रभु रामलाल भक्तवत्सलाय नमः
१९. ॐ प्रभु रामलाल आनन्दकन्दाय नमः
२०. ॐ प्रभु रामलाल लीलाधारिणे नमः
२१. ॐ प्रभु रामलाल भवभय हारिणे नमः
२२. ॐ प्रभु रामलाल मोक्ष प्रदात्रे नमः
२३. ॐ प्रभु रामलाल जटा धारिणे नमः
२४. ॐ प्रभु रामलाल शूलपाणिने नमः
२५. ॐ प्रभु रामलाल चन्द्रमौलिने नमः
२६. ॐ प्रभु रामलाल त्रिलोचनाय नमः
२७. ॐ प्रभु रामलाल नागेन्द्र हाराय नमः
२८. ॐ प्रभु रामलाल व्याघ्राम्बरधराय नमः
२९. ॐ प्रभु रामलाल श्वेताम्बरधराय नमः
३०. ॐ प्रभु रामलाल त्र्यम्बकाय नमः
३१. ॐ प्रभु रामलाल सदाशिवाय नमः
३२. ॐ प्रभु रामलाल विश्वनाथाय नमः
३३. ॐ प्रभु रामलाल विश्वमूर्तये नमः
३४. ॐ प्रभु रामलाल सद्योजाताय नमः
३५. ॐ प्रभु रामलाल भवोद्भवाय नमः
३६. ॐ प्रभु रामलाल वामदेवाय नमः
३७. ॐ प्रभु रामलाल रुद्राय नमः
३८. ॐ प्रभु रामलाल ईशानाय नमः
३९. ॐ प्रभु रामलाल महाकालाय नमः
४०. ॐ प्रभु रामलाल सर्वभूत दमनाय नमः

४१. ॐ प्रभु रामलाल मृत्युञ्जयाय नमः
४२. ॐ प्रभु रामलाल आशुतोषाय नमः
४३. ॐ प्रभु रामलाल पशुपतये नमः
४४. ॐ प्रभु रामलाल कामारये नमः
४५. ॐ प्रभु रामलाल गुणातीताय नमः
४६. ॐ प्रभु रामलाल निर्द्वन्द्वाय नमः
४७. ॐ प्रभु रामलाल निरामयाय नमः
४८. ॐ प्रभु रामलाल निरुपमाय नमः
४९. ॐ प्रभु रामलाल प्राणाधिपतये नमः
५०. ॐ प्रभु रामलाल अपानाधिपतये नमः
५१. ॐ प्रभु रामलाल समानाधिपतये नमः
५२. ॐ प्रभु रामलाल उदानाधिपतये नमः
५३. ॐ प्रभु रामलाल व्यानाधिपतये नमः
५४. ॐ प्रभु रामलाल सुषुम्नाधिपतये नमः
५५. ॐ प्रभु रामलाल कुण्डलिन्यधिपतये नमः
५६. ॐ प्रभु रामलाल मूलाधाराधिपतये नमः
५७. ॐ प्रभु रामलाल स्वाधिष्ठानाधिपतये नमः
५८. ॐ प्रभु रामलाल मणिपूरक चक्राधिपतये नमः
५९. ॐ प्रभु रामलाल अनाहत चक्राधिपतये नमः
६०. ॐ प्रभु रामलाल विशुद्ध चक्राधिपतये नमः
६१. ॐ प्रभु रामलाल आज्ञा चक्राधिपतये नमः
६२. ॐ प्रभु रामलाल हं, यं, वं, रं, लं, बीजाक्षराणामधिपतये नमः
६३. ॐ प्रभु रामलाल शर्वाय पृथ्वीमूर्त्तये नमः
६४. ॐ प्रभु रामलाल भवाय जलमूर्त्तये नमः
६५. ॐ प्रभु रामलाल रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः
६६. ॐ प्रभु रामलाल उग्राय वायुमूर्त्तये नमः
६७. ॐ प्रभु रामलाल भीमाय आकाश मूर्त्तये नमः
६८. ॐ प्रभु रामलाल सद्गुरु वेशाय कल्याण मूर्त्तये नमः
६९. ॐ प्रभु रामलाल ओंकार स्वरूपाय नमः
७०. ॐ प्रभु रामलाल सर्वज्ञाय नमः
७१. ॐ प्रभु रामलाल सर्वसमर्थाय नमः
७२. ॐ प्रभु रामलाल अन्तर्यामिने नमः
७३. ॐ प्रभु रामलाल जीवन तत्त्व प्रकाशकाय नमः
७४. ॐ प्रभु रामलाल अमरतत्व प्रकाशकाय नमः
७५. ॐ प्रभु रामलाल शरणागत रक्षकाय नमः

७६. ॐ प्रभु रामलाल भवरोग वैद्याय नमः
७७. ॐ प्रभु रामलाल कृपानिकेतनाय नमः
७८. ॐ प्रभु रामलाल भक्तजनरंजकाय नमः
७९. ॐ प्रभु रामलाल परमहितकारिणे नमः
८०. ॐ प्रभु रामलाल अमंगलहारिणे नमः
८१. ॐ प्रभु रामलाल विघ्नविनाशिने नमः
८२. ॐ प्रभु रामलाल पापविनाशिने नमः
८३. ॐ प्रभु रामलाल ज्ञान प्रकाशकाय नमः
८४. ॐ प्रभु रामलाल अखण्ड मण्डलाकाराय नमः
८५. ॐ प्रभु रामलाल सर्वव्यापकाय नमः
८६. ॐ प्रभु रामलाल अनन्ताय नमः
८७. ॐ प्रभु रामलाल गणपतये नमः
८८. ॐ प्रभु रामलाल प्रजापतये नमः
८९. ॐ प्रभु रामलाल रामाय नमः
९०. ॐ प्रभु रामलाल कृष्णाय नमः
९१. ॐ प्रभु रामलाल पुरुषोत्तमाय नमः
९२. ॐ प्रभु रामलाल पुण्डरीकाक्षाय नमः
९३. ॐ प्रभु रामलाल नारायणाय नमः
९४. ॐ प्रभु रामलाल सर्ग-स्थिति अन्तकारिणे नमः
९५. ॐ प्रभु रामलाल ब्राह्मण प्रियाय नमः
९६. ॐ प्रभु रामलाल सर्वदेवमयाय नमः
९७. ॐ प्रभु रामलाल सर्वतीर्थमयाय नमः
९८. ॐ प्रभु रामलाल अखण्ड ज्योतिरूपाय नमः
९९. ॐ प्रभु रामलाल चन्द्रमोहन रूपधारिणे नमः
१००. ॐ प्रभु रामलाल मुलख रूपधारिणे नमः
१०१. ॐ प्रभु रामलाल महावतार बाबा रूप धारिणे नमः
१०२. ॐ प्रभु रामलाल मत्स्येन्द्र स्वरूपाय नमः
१०३. ॐ प्रभु रामलाल नाना रूप धारिणे नमः
१०४. ॐ प्रभु रामलाल चन्द्रमोहन हृदयविहारिणे नमः
१०५. ॐ प्रभु रामलाल चन्द्रमोहन मन मोहनाय नमः
१०६. ॐ प्रभु रामलाल चन्द्रमोहन प्राणेश्वराय नमः
१०७. ॐ प्रभु रामलाल योगेश्वराणाम् ईश्वराय नमः
१०८. ॐ प्रभु रामलाल मम प्राणाधाराय नमः

रामलाल अष्टोत्तरी जो ले निशदिन फेर।
पूरण हों सब कामना मिटहिं लाख चौरासी फेर।

महाप्रभु रामलाल जी की जय-शरणम्

★

—: सम्पादकीय निवेदन :—

योग-योगेश्वर आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव जी की अपार अनुकम्पा से श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज के परम पावन जन्मोत्सव के साथ ही 'सिद्धयोग' अपने जीवन के २८वें वर्ष को पूरा कर २९वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। योग के सिद्धान्त एवम् शिक्षाओं के प्रचारार्थ ही परमपूज्य गुरुदेव जी ने 'सिद्धयोग' को प्रारम्भ किया था। उनके शुभ संकल्प से अब तक यह अबाध गति से प्रकाशित होता चला आ रहा है। इसमें किसी भी प्रकार के विज्ञापनों को ग्रहण न करना पूज्य सद्गुरुदेव की घोषित नीति रही है। इसी नीति का पालन अब तक होता चला आ रहा है। श्री गुरुदेव के तिरोहित हो जाने के बाद इसके ग्राहक के रूप में थोड़े ही गुरु भाई-बहिन सहयोग दे रहे हैं अतः उससे प्राप्त शुल्क से पूरे वर्ष का प्रकाशन व्यय नहीं चल पाता है जिसकी पूर्ति के लिये सम्पादक व व्यवस्थापक मण्डल को अनुदान के रूप में स्थान-स्थान से धन की व्यवस्था करनी पड़ती है।

अतः 'सिद्धयोग' के सभी पाठकों एवम् गुरुभाई-बहिनों से निवेदन है कि वे स्वयं ग्राहक बनें तथा अन्यों को ग्राहक बनने-बनाने की प्रेरणा दें। मण्डलानुसार जिन-जिन अधिकृत गुरुभाई-बहिनों का नाम निर्धारित है उन्हें अपना पावन कर्त्तव्य समझते हुए इस ओर तत्परता से जुट जाना चाहिए ताकि 'सिद्धयोग' स्वावलम्बी बन सके। कागज की कीमत में निरन्तर वृद्धि होने के कारण इसके शुल्क में भी वृद्धि करना आवश्यक हो गया है।

'सिद्धयोग' के प्रकाशन में जिन लेखकों, कवियों तथा ध्यानयोगियों के प्रेरणाप्रद लेखों से 'सिद्धयोग' प्राणवान बना हुआ है, इस अवसर पर उन्हें हम अपना विनम्रतापूर्वक हार्दिक धन्यवाद अर्पित करते हैं और उनसे आशा करते हैं कि इसी प्रकार से योग सम्बन्धी अपने सारगर्भित लेखों को भेजते हुए हमें अनुगृहीत करते रहेंगे।

जीवन-धन गुरुदेव ही 'सिद्धयोग' के सर्वस्व हैं। इसकी भावी सफलता के लिये हम और आप सभी श्री सद्गुरुदेव के चरण-कमलों का पावन चिन्तन करते हुए आगे बढ़ें।

विनयावनत :
सद्गुरु चरण रज
ब्र० दासलाल शर्मा

SIDDHAYOGA Regd. No. L. AG. 008. APRIL 1996

प्रेषक कार्यालय :—

सिद्ध योग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक

उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र सबाई (एत्मादपुर) आगरा।

PRINTED MATTER

Book-Post

श्री ....

....

....

....

न पतन्ति कृतान्तमुखे

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः परिसरपद्धति हृदयमारुणयो दहरम् ।
तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं पुनरिह यत समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे ॥

ऋषियों ने आपकी प्राप्ति के लिए अनेक मार्ग माने हैं। उनमें जो स्थूल दृष्टि वाले हैं, वे मणिपूरक चक्र में अग्निरूप से आपकी उपासना करते हैं। अरुणवंश के ऋषि समस्त नाड़ियों के निकलने के स्थान हृदय में आपके परम सूक्ष्मस्वरूप दहर ब्रह्म की उपासना करते हैं। प्रभो! हृदय से ही आपको प्राप्त करने का श्रेष्ठ मार्ग सुषुम्ना नाड़ी ब्रह्मरन्ध्र तक गई हुई है। जो पुरुष उस ज्योतिर्मय मार्ग को प्राप्त कर लेता है और उससे ऊपर की ओर बढ़ता है, वह फिर जन्म-मृत्यु के चक्कर में नहीं पड़ता।

—ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय ते

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बल्केश्वर कालोनी, ताजगंज, आगरा से मुद्रित एवं श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सबाई (आगरा) से प्रकाशित। फोन : 330426